मानस-मकरन्द

गोस्वामी जी की जीवनी, आलोचना, कठिन
शब्दों के अर्थ और अन्तर्कथाओं से
युक्त 'मानस' के सुन्दर सार-
गर्भित पद्यों का संग्रह।

संकलनकर्त्ता और सम्पादक

श्री पाण्डेय रामावतार शर्म्मा, एम ए, विशारद

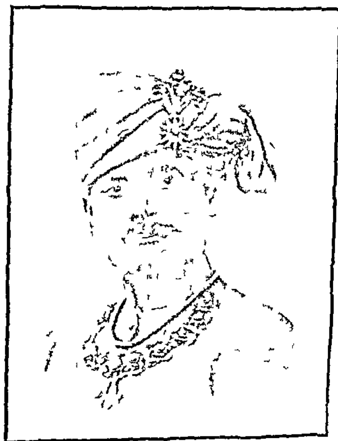
(भारतवर्ष का इतिहास, संस्कृत-ज्ञानोदय, नारी विस्तार,
ऋजुशिक्षा, प्रबन्ध पुष्पाञ्जलि, गीतावली आदि
के लेखक और सम्पादक)

प्रकाशक

शर्म्मा-साहित्य-सदन

परौंधी, पो० भवनाथपुर, जिला पलामू।

प्रथम संस्करण] सन् १९२८ ई० [मूल्य ॥=)



श्रीयुत कुमार गङ्गानन्द सिंह जी

S. L. N Press Benares

यह

"मानस मकरन्द"

श्रीनगर-नरेश साहित्य सरोज कविकुल-चन्द्र

श्री कमलानन्द सिंह जी के कुल-दिवाकर

हिन्दी के सुलेखक, देश सेवा के उपासक,

शुद्धोन्नत जीवन के नेमी,

बिहार हिन्दू-सभा के सभापति

श्रीयुत कुमार गङ्गानन्द सिंह जी

एम ए, एम एल ए, एम. आर. ए एस, एफ आर ए एस.

के

कर-कमलों में

साहित्य-सेवा के उत्साह दान के भेंट स्वरूप

सादर समर्पित है।

विनीत

पाण्डेय रामावतार शर्म्मा

विषय-सूची

कृतज्ञता-प्रकाश

प्रस्तुत 'मानस-मकरन्द' के सम्पादक द्वारा लिखित और सम्पादित कुछ पुस्तकें अब तक भिन्न भिन्न प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित हुई हैं, यद्यपि साहित्य-सेवा-व्यसनी सम्पादक ने अपने इच्छानुसार तथा अपनी देखरेख में सुन्दर पाठ्य पुस्तकों के प्रकाशन तथा मातृभाषा सेवा-सुलभता के निमित्त 'शर्म्मा-साहित्य-सदन' नामक एक अपनी संस्था स्थापित की है। अभी तक उचित व्यवस्था न हो सकने के कारण उक्त संस्था इस 'मानस-मकरन्द' से भी प्रकाशन-कार्य्य का श्रीगणेश नहीं करने पाती यदि बिहार के एक परम प्रसिद्ध विद्याविभूषित तथा श्रीसम्पन्न प्रतिभाशाली राजकुलोद्भव पूज्य पुरुष की कृपा इस पर नहीं होती और आप अपनी महत्ता और साहित्यप्रियता का परिचय देते हुए मकरन्द-सम्पादक के एक तुच्छ समर्पण को स्वीकार करने की दया नहीं दिखलाते।

आप सर्वगुणालंकृत राजकुमार हैं जिनकी कीर्ति भारत की प्रत्येक दिशा में व्याप रही है नाम है कुमार गंगानन्द सिंह जी बहादुर M. A., M. L. A., M. R. A. S., F. R. A. S.। आपका जन्म पूर्णिया जिलान्तर्गत श्रीनगर के राजकुल में १८९८ ई० के २४ सितम्बर को हुआ था। यह छिपी बात नहीं है कि राजा दुलारसिंह जी द्वारा संस्थापित बनैलीराजकुल में एक से एक विद्याव्यसनी, साहित्यप्रेमी काव्यमर्मज्ञ, साहित्यसेवी और साहित्यसेवी सहायक हो गए हैं।

राजा दुलारसिंह जी के ही छोटे पुत्र राजा रुद्रानन्द सिंह जी के, जो बनैली छोटे तरफ (पीछे श्रीनगर के नाम से प्रसिद्ध) के अधिपति थे, वंश में श्रीकुमार साहब हैं। राजा रुद्रानन्द सिंह जी के पुत्र राजा

श्रीनन्दनसिंह जी थे, जिन्होंने श्रीनगर ग्राम बसाया था। आपके तीन पुत्र हुए—राजा नित्यानन्द सिंह जी, राजा कमलानन्द सिंह जी, और राजा कालिकानन्द सिंह जी। राजा नित्यानन्द सिंह जी पृथक् हो गए और राजा कमलानन्द सिंह जी २४ वर्ष की अवस्था में १९१० ई० में गोलोकवासी हुए। राजा कमलानन्द सिंह जी के ही सुपुत्र कुमार गगानन्द सिंह जी हैं।

राजा कमलानन्द सिंह जी को हिन्दी से उत्कट प्रेम था। आप थे 'साहित्य सरोज कवि कुल चन्द्र'। आपने 'आनन्द मठ' का अनुवाद किया और अन्य छोटे छोटे ग्रन्थ तथा स्फुट कविताएँ बनाईं। आपके जीवन-काल में आपके पास कवियों और विद्वानों की भीड लगी रहती थी और उनका सदा सम्यक् सम्मान होता रहता था। आपके भ्राता राजा कालिकानन्द सिंह जी भी कम विद्या प्रेमी नहीं हैं। आपका जैसा सरल स्वभाव है, वैसी ही आप में सहृदयता और विद्याप्रियता भी है। आपकी सहायता से अनेक दीन विद्यार्थी उच्च शिक्षा पा चुके हैं और पा रहे हैं। आपकी विद्यानुरागिता इससे भी प्रकट होती है कि आपकी देख रेख में ही कुमार साहब का पठन-पाठन हुआ और आपका ऐसी उच्च शिक्षा और कीर्त्ति प्राप्त हुई।

ऐसे गौरवशाली कुल के योग्य ही कुमार गगानन्द सिंह जी में सद्‌गुण हैं। आपके सिद्धान्त परिष्कृत और उच्च तथा कार्य उन्नत और जनता प्रिय हैं। आपका संक्षिप्त परिचय, या प्राप्त विद्या का उल्लेख कहा जाय, 'टाइम्स आफ-इण्डिया' के 'इण्डियन इयर बुक' में प्रकाशित हुआ है। आपकी शिक्षा मुङ्गेर जिला स्कूल, पूर्णिया जिला स्कूल, कलकत्ता-प्रेसिडेन्सी कालेज, कलकत्ता संस्कृत कालेज, और कलकत्ता विश्वविद्यालय के पोष्ट ग्रेजुएट डिपार्टमेंट में पूरी हुई और १९२१ ई० में आपने एम ए की उपाधि प्राप्त की। तब से आप सर्वदा तत्परता और कर्त्तव्यपरायणता से सभी सार्वजनिक, राजनीतिक, धार्म्मिक और विद्या सम्बन्धिनी सभी संस्थाओं में सम्मिलित हुआ करते हैं।

१९२५ ई० मे एसेंब्ली में स्वराज्य पार्टी से मिलकर आपने अपनी देश सेवा के भाव का परिचय दिया। सन् १९२५–२८ में आप पूर्णिया जिले की कांग्रेस कमिटी और बि० प्रा० हिन्दू सभा के सभापति हुए। १९२६ ई० में बि० प्रा० कवि सम्मेलन के सभापति-पद पर भी आप सुशोभित हुए। आपके गम्भीर और ओजपूर्ण लेख अंग्रेजी पत्रों में भी छपा करते हैं। आपके लेख दो बार (द्वितीय और तृतीय) मदरास ओरिएन्टल कान्फ्रेन्स मे भी पढ़े गए हैं। आपके लिखे कई ग्रन्थ हैं, जिनके प्रकाशन का प्रबन्ध हो रहा है।

ऐसे विख्यात, विद्वान्, सिद्धहस्त लेखक, काव्यकलामर्मज्ञ, उत्साही, मातृभाषा सेवी और लक्ष्मी के कृपापात्र पुरुष की कृपा से बल पाकर ही 'शर्म्मा साहित्य-सदन' बिहार के प्रतिभावान् लेखक श्री पाण्डेय रामावतार शर्म्मा विशारद, एम ए की लिखी पुस्तकों के प्रकाशन कार्य्य में अग्रसर हुआ है, जिस बल और आश्रय के लिए उक्त संस्था कुमार साहब की कृतज्ञ है और रहेगी। साथ ही वह पूरी आशा रखती है कि इसी प्रकार के आश्रय से हिन्दी भाषा की सेवा समुचित रूप से करती रहेगी।

विनीत
पाण्डेय मुनीश्वर शर्म्मा,
व्यवस्थापक—शर्म्मा-साहित्य सदन।

दो विनीत बातें

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा—
यत्सत्त्वादमृषेव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां—
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

शिक्षा विभाग के हिन्दी-हितैषियों और विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत 'मानस मकरन्द' समुपस्थित करते हुए मुझे उसके सम्बन्ध में दो बातें निवेदन करनी हैं। पहली बात यह है कि यह पुस्तक महाकवि तुलसी दासजी के सर्वप्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' का 'मकरन्द' है। दूसरी बात यह कि इस संग्रह में यह ध्यान रक्खा गया है कि अल्प अध्ययन में ही पाठकों को गोस्वामी जी के सिद्धान्त, कविता और भाषा का बहुत कुछ परिचय प्राप्त हो जाय और उनके हृदय में साहित्य-रसास्वादन की लालसा बलवती हो।

गोस्वामीजी की कीर्ति और विशेषतः साहित्य-सेवा के सम्बन्ध में कुछ कहना 'चर्वित-चर्वण' वाली बात होगी, क्योंकि इस सम्बन्ध में बहुतों ने बहुत कुछ लिखा है। सभी लोग आप से पूर्णतः परिचित हैं और आप की पीयूषवर्षिणी कविता से अपूर्व आनन्द उठाया करते हैं। गोस्वामीजी कृत एक से एक अमोल रत्न है, परन्तु मानस सर्वश्रेष्ठ है और उसी के गात्र

अन्य ग्रन्थों मे भी पाए जाते हैं। मानस द्वारा गोस्वामीजी ने साहित्य सेवा के अतिरिक्त समाज और धर्म्म की भी भारी सेवा की है। इस कारण भाषा का थोड़ा ज्ञान होते ही विद्यार्थियों का तुलसीजी से परिचय कराना प्रत्येक प्रान्त के शिक्षा विभाग के विचारशील नागरी नागरों का कर्त्तव्य है।

किन्तु इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान देने की बात है कि मानस के किसी एक काण्ड को किसी क्लास के लिये पाठ्य पुस्तक बनाने में कुछ न कुछ कठिनाई बराबर बनी रहने की सम्भावना है। कहीं कहीं पाठ्य पुस्तक-निर्वाचिनी समिति के कुछ अनुभवी हिन्दी प्रेमी सदस्यों ने यह स्वीकार भी किया है कि किसी एक काण्ड को पाठ्य पुस्तक बनाने से कभी तो उससे उस कक्षा की समता और आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती, कभी स्वीकृत काण्ड मे गोस्वामीजी के सिद्धान्त विद्यार्थियों पर प्रकट नहीं होते, कभी एक के रखने से पृष्ठ अधिक हो जाते हैं और उसे हटाकर दूसरा रखने पर कम। जैसे 'अयोध्याकाण्ड' को प्रवेशिका परीक्षा (Matriculation Examination) की पाठ्य पुस्तक बनाने से पुस्तक बड़ी हो जाती है और पाठ भी कठिन हो जाते हैं। नियत्त समय में सहज ही वह समाप्त भी नहीं होता। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये सुन्दरकाण्ड या किष्किन्धाकाण्ड को उसके स्थान में रखने पर पाठ सरल हो जाता है और काव्य का अच्छा अंश भी विद्यार्थियों को नहीं मिलता। ऐसी दशा की कठिनाई और सरलता की समस्या तभी सुलझ सकती है जब उस परीक्षा के परीक्षार्थियों के उपयुक्त कोई सुन्दर संग्रह पाठ्य पुस्तक के रूप में पाठकों के समक्ष रक्खा जाय।

इस भाव से प्रेरित होकर कुछ प्रकाशकों ने 'संक्षिप्त रामायण' के संस्करण और तुलसीजी के ग्रन्थों से संग्रह भी प्रकाशित किये हैं। पर उन्हें भी पाठ्य पुस्तक बनाते समय विद्वानों को कक्षा और समय पर ध्यान देना होगा। साथ ही उद्धृत विषयों की गम्भीरता, भावचित्रण काव्यसरसता, आदि आवश्यक बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

कुछ वर्षों से स्कूलों में कार्य करने और प्रवेशिका के परीक्षार्थियों की योग्यता तथा प्रवृत्ति से परिचय पाने के अनन्तर मैंने उनके व्यवहार के योग्य यह 'मानस मकरन्द' सम्पादित किया है। मानस के प्रथम सोपान की वन्दना और वाटिका के वर्णन में जैसा सौंदर्य है, वैसा ही भावमय माधुर्य और कारुण्य द्वितीय सोपान के मथरा की मन्त्रणा, राम के वनगमन और भरत की व्याकुलता में है। तृतीय सोपान में सीता को पातिव्रत पर अनुसूया उपदेश और पंपासर की शोभा सुन्दर और प्रधान स्थान है। चतुर्थ सोपान में वर्षा और शरद के वर्णन के अतिरिक्त सग्रह योग्य और क्या है ? पंचम सोपान का सर्वस्व सीता और रावण का कथोपकथन है। षष्ट सोपान में लक्ष्मण की शक्ति का स्थल अत्यन्त सुन्दर है और उससे सम्बद्ध कुम्भकर्ण वध में युद्ध-वर्णन भी भली भाँति किया गया है। सप्तम सोपान में ज्ञान-दीपक और रामराज्य वर्णन सुन्दर अश है, जिनमें ज्ञान दीपक बहुत लम्बा चौड़ा और गम्भीर है, पर रामराज्य का वर्णन बहुत सुन्दर, सरल और सहजग्राह्य है। इनके सग्रह से 'मानस-मकरन्द' में मानस के सभी सोपानों के सार भी आ जाते हैं और पुस्तक भी न बड़ी होती है, न छोटी।

इस सकलन में भिन्न भिन्न स्कूलों के अनुभवी शिक्षकों की सम्मति से छात्रों की रुचि और आवश्यकता भी मालूम कर ली गई है। इनमें में अपने मित्र पण्डित लक्ष्मीधर जी पाण्डेय बी० ए० टी० टी० पाण्डेय यदुनदन प्रसाद जी एम० ए० बी० ई० डी०, श्रीनवरंगीलालजी बी० ए० बी० एल, और श्रीनित्यानद जी त्रिवेदी का नाम नहीं भूल सकता। साथ ही इस तुच्छ भेंट को स्वीकार कर श्री सरस्वती-सुपुत्र कुमार साहब ने मुझ पर जो असीम कृपा की है, उसके लिए मैं आपका कम कृतज्ञ नहीं हूँ।

पद्य पाठ काशी-नागरी प्रचारिणी सभा और बेल्वेडियर प्रेस, प्रयाग के मानस सस्करण के अनुकूल रक्खा गया है। छात्रों की जानकारी के लिए मकरन्द के आरम्भ में तुलसीदास जी की सक्षिप्त जीवनी तथा अन्य

आलोचनात्मक बातें और अन्त में कठिन शब्दों के अर्थ तथा अन्तर्कथाएँ भी दे दी गई हैं।

हिन्दी प्रेमियों की कृपा से इन विशेषताओं से युक्त इस 'मानस मकरन्द' के छात्रोपयोगी सिद्ध होने से मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

शर्म्मा-साहित्य-सदन खरौंधी,
पो० भवनाथपुर, जिला पलामू।
विजयादशमी, वि० स० १९८५

नागरी-नागरों का कृपाकांक्षी
पाण्डेय रामावतार शर्म्मा।

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी

का

संक्षिप्त जीवन वृत्त

स्यात् ही ऐसा कोई थोडा भी पढ़ा लिखा पुरुष होगा, जिसने गोस्वामी जी की रामायण न देखी हो और जो प्रेम तथा श्रद्धा से उसकी चौपाइयों के पढने गाने की लालसा न रखता हो। इससे रामचरितमानस की सर्वप्रियता और उसके रचयिता महाकवि तुलसीदास जी की विस्तृत ख्याति प्रकट होती है। विद्या प्रेमी-समाज में भी गोस्वामीजी का स्थान अत्युच्च है और आपकी मन्जुल मनोहारिणी कविता के रसास्वादन से सभी विद्वान् अपने को कृतकृत्य मानते हैं। लेखकों की लेखनी भी गोस्वामी जी की राम भक्ति, काव्यग्रन्थ-गुण-गरिमा और रचना सौंदर्य पर अनेकों लेख सूक्ष-समन्वित विचार और टिप्पणियाँ प्रकाशित कर पवित्र हो चुकी हैं। आश्चर्य है, तब भी मानसकार महाकवि की जीवनी की कई बातें अभी तक अनिश्चित और अज्ञात हैं।

ख्याति

कवि कुल-कुमुद-कलाधर गोस्वामी जी के जन्म का ठीक समय और स्थान किसी ग्रन्थ में लिखा नहीं मिलता। अतएव जन्म-काल और जन्म-स्थान के निर्णय में इस सम्बन्ध के विचारों, भिन्न लेखों और कल्पनाओं का आश्रय लेना पडता है।

जन्म-काल और जन्म स्थान

इन्हीं साधनों के आधार पर गोस्वामी जी के जन्म के काल और स्थान के सम्बन्ध में कई सिद्धान्त खडे किए गए हैं, परन्तु अधिक लोग गोस्वामी जी का जन्मकाल संवत् १५८९ और जन्मस्थान बाँदा जिले का

राजापुर नामक ग्राम मानते हैं। राजापुर मे प्रमाण स्वरूप कुटी, मन्दिर आदि विश्वासप्रदायिनी वस्तुएँ भी लभ्य है।

यह निश्चित है कि तुलसीदास जी का जन्म ब्राह्मण कुल मे हुआ था, यद्यपि वह कौन ब्राह्मण थे, इसके निर्णय में आजतक मतभेद है। कोई उन्हें कान्यकुब्ज और कोई सरयूपारीण ब्राह्मण कहता है। किन्तु उनका सरयूपारीण होना ही अधिक लोगों को मान्य और प्रमाणसिद्ध भी है।

कुल

काल और स्थान के समान गोस्वामी जी के माता पिता के नाम भी कही लिखे नही मिलते। पर लोक प्रसिद्ध बात यह है कि उनकी माता का नाम हुलसी था और पिता का आत्माराम दूबे।

कहा जाता है कि बचपन में ही गोस्वामी जी को माता पिता के वियोग का कष्ट सहना पड़ा। यह कथन सर्वथा निर्मूल नहीं कहा जा सकता, जब इसकी पुष्टि के निम्नलिखित प्रमाण मिलते हे—

बचपन की विपत्ति

"मातु पिता जग जाइ तज्यो बिधिहू न लिख्यो कछु भाल भलाई"—

—कवितावली।

"तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मात पिताहू।"

"जनक जननि तज्यो जननि करम बिनु विधि सिरज्यो तज्यो मात पिताहू"।—विनयपत्रिका।

इस वियोग के कई कारण कहे जाते हैं। कोई मूल में पड़ने के कारण माँ बाप से त्यक्त होना कहता है, कोई जन्मोपरान्त फेंक देना मानता है, और कोई कहता हे कि इनके जन्म के थोड़े काल पीछे इनके माता पिता की मृत्यु हो गई। पर इन कल्पनाओं के लिए पक्के प्रमाण नहीं मिलते। तब इन्हे न मान कर ऐसी कल्पना क्यों न की जाय कि किसी अज्ञात कारणवश या विद्याध्ययन के लिए गोस्वामी जी के माता पिता ने उन्हें घर से दूर कर दिया और पीछे उन्हें माता पिता के साथ रहने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ?

विनयपत्रिका के "ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं" की पंक्ति के बल पर कुछ लोग गोस्वामीजी का अविवाहित रहना बतलाते हैं, किन्तु पंक्ति से ऐसी बात कदापि सिद्ध न होने के कारण यह विचार भ्रांतिमूलक कहा जा सकता है। इसके विरुद्ध लोगों में प्रसिद्ध है कि गोस्वामीजी का विवाह दीनबंधु पाठक की पुत्री 'रत्नावली' से हुआ था और उससे 'तारक' नामक एक पुत्र भी हुआ था, जो बचपन में ही मृत्युग्रस्त हो गया। पीछे वह विरक्त हो गए थे और उन्होंने सन्यास धारण कर लिया था।

विवाह, वश और वैराग्य

कुछ उल्लेखों से जीवन के आरम्भिक काल में गोस्वामीजी का विषयी होना प्रमाणित होता है। यह भी मिलता है कि गोस्वामीजी के तीन विवाह हुए। तीसरा विवाह कचनपुर ग्राम के लक्ष्मण उपाध्याय की कन्या बुद्धिमती से हुआ, जिसके पीछे ससुराल जा पहुँचने पर गोस्वामीजी को अपनी धर्मपत्नी से कड़ी भर्त्सना सुननी पड़ी और उसी से उनके हृदय में विराग उत्पन्न हो गया। विराग होने पर वह संसार-सुखों से विरक्त हो गए और तीर्थों में पर्यटन करने निकले। तबसे कभी उन्हें स्त्री-मोह नहीं हुआ।

विरक्त होने पर गोस्वामीजी ने कई स्थानों में भ्रमण किया। पता चलता है कि वह भृगु आश्रम, हसनगर, ब्रह्मपुर, गायघाट, (बलिया जिलान्तर्गत), बेला-पतौत, अयोध्या, कुरुक्षेत्र, मथुरा, कोंत, बृन्दावन, प्रयाग, सोरों, जगन्नाथजी, चित्रकूट आदि स्थानों में पर्यटन किया करते थे। उनका अधिक निवास अयोध्या, चित्रकूट और काशी में था। काशी में उनका सब से अधिक रहना हुआ और अन्त तक वह वहीं रहे। काशी के हनुमानफाटक, गोपालमन्दिर, प्रह्लाद घाट और अस्सी नामक चार स्थान गोस्वामीजी के सम्बन्ध से प्रसिद्ध हैं।

वैराग्य और विचरण

कहीं कहीं गोस्वामीजी ने ऐसा उल्लेख किया है जिससे उनके किसी गुरु से शिक्षा पाने का आभास मिलता है, परन्तु किसी ग्रंथ में किसी

गुरु का नाम नहीं मिलता। 'बंदउँ गुरुपद कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि'—में 'नर रूप हरि' पद है, जिससे लोग अर्थ निकालते हैं कि गोस्वामीजी के गुरु का नाम 'नरहरिदास' था। परन्तु तुलसी चरित में गोस्वामीजी के गुरु का नाम रामदास जी लिखा है। तुलसी चरित का कथन ही अधिक मान्य मालूम होता है, क्योंकि जैसी शिक्षा का विवरण उसमें पाया जाता है, वैसी ही विद्वत्ता गोस्वामीजी के ग्रंथों से प्रकट होती है।

गुरु

गोस्वामीजी की निधन तिथि जन्म-काल से अधिक प्रसिद्ध है। वह तिथि इस दोहे से प्रकट होती है—

"संवत् सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥"

मृत्यु

अर्थात्, श्रावण शुक्ला ७, सं० १६८० को काशी में गंगा के अस्सी घाट पर गोस्वामीजी ने शरीर त्याग किया। यह मास संवत ठीक माना जाता है। कई प्रमाणों से यह बात सिद्ध होती है कि गोस्वामीजी की मृत्यु प्लेग से हुई। कुछ लोग इसे नहीं मानते। स्यात् महामारी को बुरा रोग समझकर उनके भक्त ऐसे महात्मा की मृत्यु महामारी से बताना अच्छा न समझते हों। ऐसा विचार कोई विचार नहीं। मृत्यु किसी रोग को विशेषता नहीं देती, और किसी रोग की भयंकर दशा मृत्यु के लिए पर्याप्त है।

गोस्वामी जी का पाण्डित्य अगाध था। आप महाकवि थे, पण्डित शिरोमणि थे, संतराज थे, और समाजोन्नति पर सदा ध्यान रखनेवाले धर्मात्मा थे; तथापि आपका हृदय अत्यन्त सरल और नम्र था। आप में महत्ता के अभिमान का नाम भी नहीं था। आपकी आंतरिक सरलता और नम्रता के फल स्वरूप ही आपके श्रीमुख से निकला था—"कबि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ। मति-अनुरूप राम-गुन गावउँ।" रामचरितमानस के आरम्भ में अपनी नम्रता का

प्रकृति

परिचय देते हुए गोस्वामी जी ने सभी लोगों की वंदना की है। उसमें जहाँ आप "व्यास आदि कवि पुंगव नाना" की वंदना करते है, वहीं निश्छल भाव से और नम्रता पूर्ण शब्दों में "कलि के कविन्ह करउँ परनामा" भी अंकित करते है। इतना ही नहीं, "भये जे अहहिं जे होइअहिं आगे प्रनवउँ सबहि कपट सब त्यागे।" निवेदन करने पर ही आपको शांति मिलती है।

आप भक्ति रस में शराबोर रहते थे और भक्ति आपके जीवन का लक्ष्य था, पर आपकी भक्ति सदा सदाचार के मार्ग पर चलते रहने की एक शक्ति थी। उस शक्ति से समन्वित होने पर लंपटता और विलासिता का अणुमात्र भाव भी मनुष्य के पास फटकने नहीं पाता। यही कारण है कि गोस्वामीजी का जीवन एक आदर्श और विमल जीवन था। भक्ति के आश्रय से "वंचक भगत कहाइ राम के" जीना आपको प्रिय नहीं था, न आपको धम्माडम्बर से प्रेम था। आपने कहा भी है—"धिक धरमध्वज धंधरकधोरी।"

आप निश्चय, गंभीर, नम्र और शांत थे, परन्तु खलों को बढ़ावा देना आप समाज के लिए बुरा मानते थे, क्योंकि दुर्जनों के दमन से ही मानव समाज में शांति रह सकती है, और ऐसा न करने से उनके बुरे विचारों को और भी बल मिलता है। यही भाव व्यक्त करते हुए आपने लिखा— "वायस पालिय अति अनुरागा। होहि निरामिष कबहुँ कि कागा।"

गोस्वामी जी के हृदय में समाजोन्नति और भारत हित की लहरें उमड़ती रहती थीं। अतएव अन्याय, अभिमान, द्वेष दुर्भिक्ष प्रकोप, रोगोपद्रव आदि से समाज और देश को दुःखी देख आपका हृदय द्रवित हो उठता था। आपके हृदय में किसी की बुराई का कभी ध्यान नहीं आया, न आप सदाचार और कर्त्तव्य के मार्ग से विचलित हुए, तथापि काशी के कुछ अभिमानी, अज्ञानी और स्वार्थी पुरुष आपसे द्वेष भाव रखते थे। पर आप ऐसे निष्काम भक्त को उस अकारण द्वेष से क्या चिन्ता हो

सकती थी ? आप तो सदा सोचा करते थे कि किसी की बुराई मुझसे न हो जाय, क्योंकि आपका अन्त करण निर्मल था, आपको किसी से द्वेष नहीं था, दुष्कर्म से आपका कोई सम्बन्ध नहीं था और न आप ईर्ष्यावश किसी की कुछ हानि करने का विचार रखते थे।

आजकल तुलसीजी भक्ति रस के एक प्रधान वैष्णव माने जाते हैं। साथ ही कुछ लोग आपको शैव भी कह बैठते हैं। परन्तु वास्तविकता इन मनमानी बातों से कहीं दूर है। न तो आप आज की सी भक्ति के कट्टर भक्त थे, न शिवोपासना के बाह्य लक्षणों के दास थे। आपके ग्रन्थों के विचार आपको किसी सीमाबद्ध सम्प्रदाय का सिद्ध नहीं करते। आप की धार्मिक उदारता, समाजप्रियता, विचारश्रृङ्खला और प्राचीन ग्रन्थों के प्रति श्रद्धा न तो आज के वैष्णव कहलानेवालों में मिलती है, न शैवों में।

धार्मिक सिद्धान्त

आप भक्ति मार्ग के पथिक थे, पर आपकी भक्ति और उपासना निराली थी। आप अपने इष्टदेव में सर्वदा तल्लीन रहते थे। आप के इष्टदेव राम थे, और साधारण लोग दशरथात्मज मर्य्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र-जी को उनका इष्टदेव मानते हैं और देखादेखी बहुत लोग राम-नाम जाप को मुक्तिदाता और स्वार्थापहर्त्ता समझते हैं। परन्तु सूक्ष्म विचार इस स्थूल भाव को स्वीकार नहीं करता। क्योंकि गोस्वामीजी के 'राम' महाराज दशरथ के पुत्र होते हुए भी 'सब में रमण करणवाले' के सत्यार्थ के परि-चायक थे। यह कोई क्लिष्ट कल्पना नहीं है। आपने वन्दना में स्पष्टतया कह दिया है—"वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीश्ं हरिम्।" पुनश्च—

सारद सेष महेस बिधि, आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहिं निरंतर गान॥

परब्रह्म सर्वव्यापक है, वह सभी मनुष्यों के हृदय में निवास करता है और सभी वस्तुओं में वर्त्तमान है। उसी प्रकार राम-सत्ता भी संसार

की सभी वस्तुओं में वर्त्तमान है। विचार से सब जग को 'राम नाम-मय' बतलाया और "लोग कहैं पोच, सो न सोच, न सँकोच मेरे, ब्याह न बरेखी, जाति पाँति न चहत हौं" कहकर जाति-पाँति के विरोध को व्यर्थ बता 'हरि को भजै सो हरि का होई' का उपदेश दिया।

गोस्वामीजी को ऋषि रचित सद्ग्रन्थों के सिद्धान्त ही प्रिय थे और उन्हीं के बताए धर्ममार्ग पर चलने से वह समाज का कल्याण मानते थे। धार्म्मिक क्षेत्र में आप समता का साम्राज्य देखते थे। आपने इसमें जाति पाँति के विचार से घृणा और तिरस्कार को स्थान नहीं दिया। प्राचीन वैदिक मार्ग त्याग और समाज की गिरती दशा से आपको भारी कष्ट होता था। नाना पथ, भिन्न भिन्न मत, प्रेत पाखण्ड मिथ्यावाद आदि शास्त्रविरोधी बातों से आपका हृदय खिन्न रहता था और वह खिन्नता आपने समय समय पर प्रकट भी की है। यथा—

"अशुभ भेष भूषन धरे, भच्छाभच्छ जे खाहिं।
ते जोगी ते सिद्ध नर, पूज्य ते कलियुग माँहि॥
साखी सबदी दोहरा, कहि कहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान॥
श्रुति-सम्मत हरि भक्तिपथ, संयुत बिरति-बिवेक।
तेहि परिहरहिं बिमोहबस, कल्पहिं पंथ अनेक॥
तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमहिं पूछिहै कौन॥"

—दोहावली।

तुलसीदासजी की जितनी ख्याति है उसी के योग्य आपका पाण्डित्य भी था, जिस पाण्डित्य के प्रमाण में अपनी ओर से कुछ भी कहने की

आवश्यकता नहीं जान पड़ती, जब कि आपके गम्भीर ग्रन्थ ही इसके लिए पर्य्याप्त हैं। शास्त्रों का जितना ज्ञान गोस्वामी जी को था,

पाण्डित्य

उससे कम न आप में काव्यकुशलता थी, न विचार और न विवेक। आपने पर्य्यटन और सत्सग से मानव चरित्र का अध्ययन भी पूरा किया था। विद्वानों का सग भी ज्ञान प्राप्ति का एक साधन है और इस साधन से अनेक गुण प्राप्त होते हे। गोस्वामी जी ने सत्सग की महिमा विशद और सरस रूप मे गाई हे। उससे प्रकट होता हे कि विरक्त होने के बाद आपने देश पर्य्यटन और सत्सग से बहुत लाभ उठाया। बालकाड के आरम्भ मे वंदना करते हुए गोस्वामी जी ने अपनी काव्य मर्मज्ञता और तल्लीनता का परिचय देते हुए काव्य-कुशलकारी देवताओं की ही वदना की है। यथा—

वर्णानामर्थसङ्घाना रसाना छद्सामपि।
मङ्गलाना च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥

अर्थात्—वर्णों के, अर्थ-समूहो के, रसों के, छदों के और मगलों के करनेवाली वाणी (सरस्वती) और विनायक (गणेश) की वदना करता हूँ।

आगे अपने विविध विषयों के अध्ययन और मनन पर भी गोस्वामी जी ने "नानापुराणनिगमागमसम्मत यद्, रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि।" कहकर कुछ प्रकाश डाला है।

गोस्वामी जी सस्कृत के अगाध विद्वान् थे, परन्तु आपकी पण्डिताई विवेक विहीन कोरी पण्डिताई ही नहीं थी। आपको अपने समाज की दशा का ज्ञान था, देश से प्रेम था और समाजोन्नति का ध्यान था। आप ने "भलि भारत भूमि" और "यह भारत खड समीप सुरसरि, थल भलो, सगति भली।" कहकर देश प्रेम का परिचय दिया, और उस काल मे पण्डित वृन्द के देवनागरी से घृणा करते रहने पर भी देवनागरी प्रेम दिखलाते

हुए आपने देवनागरी की सेवा में अपना अपमान नहीं समझा बल्कि आक्षेप करनेवालों को शिक्षापूर्ण उत्तर दिया—

"का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहियतु साँच।
काम जो आवइ कामरी, का लै करै कुमाच॥"

मनुष्य अपने मान्य महापुरुषों के जीवन में ऐसी बातें ढूँढता है, जो साधारण पुरुष के नित्य के कार्य्य में नहीं मिलतीं और न मनुज-शक्ति के लिए सम्भव जान पड़ती हैं। फलतः प्रसिद्ध महापुरुषों के भक्तों की प्रवृत्ति उनकी जीवनियों में चमत्कृत मनगढ़न्त कथाएँ मिलाने की ओर होती है, और जैसे जैसे समय बीतता जाता है, वैसे वैसे उनके जीवन की घटनाओं में अलौकिक बातों का समावेश होता जाता है। तो भी जन साधारण को ये बातें सच्ची प्रतीत होती हैं और उनके उल्लेख से साधारण पुरुषों के बल और महापुरुषों की महत्ता में अन्तर बताया जाता है। ऐसी ही अंध भक्ति के फल स्वरूप कुछ लोग किसी महापुरुष के अनुयायी बन उसके मत को धर्म का रूप दे डालते हैं। ऐसे मतों की प्रधानता से ही भारत में वैदिक धर्म्म का अपमान और साम्प्रदायिक बातों का पूरा प्रचार हुआ है।

गोस्वामी जी के जीवन की चमत्कार-कथायें

जिस प्रकार महात्मा बुद्ध, शंकर, कबीर आदि प्रसिद्ध समाज सुधारकों और मत प्रवर्त्तकों की जीवनियों के साथ अलौकिक कथाओं का संयोग उनके अनुयायियों ने किया है, उसी प्रकार गोस्वामी जी के भक्तों ने भी उनके जीवन के साथ कई प्रसिद्ध चकितकारी चमत्कारों का संयोग किया है। हनुमान जी की आज्ञा से चित्रकूट के वन में एक हरिण के पीछे एक श्याम और एक गौर धनुषधारी दो सुन्दर राजकुमारों के दर्शन, सती होनेवाली ब्राह्मणी के मृत पति को तीन दिनों की भगवान्-स्तुति से जिलाना, करामात न दिखाने के कारण मुगल बादशाह जहाँगीर के यहाँ क़ैद किए

जाने पर बंदरों की सेना की सहायता से मुक्त होना, तुलसी जी की जिह्वा पर बैठकर हनुमान जी का भाषा-रामायण कहना, कृष्ण मूर्ति का राम-मूर्ति हो जाना, चोरों का चेले बनाना आदि कई चमत्कारपूर्ण कथाएँ गोस्वामी जी के जीवन के साथ मिलाई गई हैं और अब भी मिलती जा रही हैं। इन गुप्त मिश्रणों के सिवा क्षेपककार प्रकटत मानस के दोहे चौपाइयों के भीतर अलौकिक कथाओं को मिलाने की चेष्टा करते रहे हैं। अब सुसयोग से क्षेपकों को दूर कर देने की ओर साहित्यिकों का ध्यान गया है। ऐसा होना भी आवश्यक है, क्योंकि असम्भव कथाएँ समाज और कर्तव्य के लिए हानिकारक हैं और उन्हें दूर करना ही न्याय सगत है।

तुलसी जी के ग्रंथ

गोस्वामी जी के ग्रन्थों की सख्या में भी बड़ा मतभेद है। मिश्र बन्धुओं ने २५, शिव सिंह सेंगर ने २२ और तुलसी जीवनी के लेखक ने ३१ ग्रन्थ गिनाये हैं। अन्य कई विद्वानों ने भी भिन्न भिन्न सख्याएँ निर्धारित की हैं। रामचरितमानस को क्षेपक-जाल से निकालने के प्रथम प्रयासी मिर्जापुर निवासी स्व० प० रामगुलाम द्विवेदी ने गोस्वामी जी के १२ ग्रन्थ गिनाये हैं। उन्हीं बारह ग्रन्थों को काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने भी प्रसिद्ध और ठीक माना है। विचारने से यही सख्या ठीक भी जान पड़ती है, क्योंकि तुलसी नामक एक कायस्थ और दूसरे एक सनाढ्य ब्राह्मण कवि हुए हैं। उनके ग्रन्थ और गोस्वामी जी के ही मुख्य बड़े ग्रन्थों के कुछ अश लेकर लोगों ने कई ग्रन्थों के नाम गिन लिये हैं। वास्तव में गोस्वामी जी के ६ बड़े ग्रन्थ ही मुख्य हैं और सब में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी की ही कथा किसी न किसी रूप में वर्णित है। गोस्वामी जी के १२ ग्रन्थों के नाम ये हैं—

बड़े ग्रन्थ

रामचरित मानस	कवितावली रामायण
विनय पत्रिका	दोहावली
गीतावली रामायण	रामाज्ञा

छोटे ग्रन्थ

पार्वती-मंगल	बरवै रामायण
जानकी-मंगल	वैराग्य-सन्दीपनी
रामलला नहछू	कृष्ण गीतावली

गोस्वामी जी के ग्रन्थों में मुख्य और परम प्रसिद्ध ग्रन्थ रामचरित मानस है। इसकी कथा जितनी सरस और हृदय पर प्रभाव डालनेवाली है, उतनी ही इसकी कविता भी मनोहारिणी है। इसमें स्थान स्थान पर अनेक विषयों का उल्लेख है, यद्यपि उसकी मुख्य कथा श्रीरामचन्द्र की जीवनी है। मानस में सप्त सोपान हैं—प्रथम सोपान बालकांड, द्वितीय सोपान–अयोध्या कांड, तृतीय सोपन–आरण्य काण्ड, चतुर्थ सोपान–किष्किंधा काण्ड, पंचम सोपान–सुन्दर काण्ड, षष्ठ सोपान–लंका काण्ड और सप्तम सोपान–उत्तर काण्ड। किसी किसी संस्करण में प्रकाशकों ने 'लवकुश काण्ड नामक' एक अष्टम सोपान भी मिला दिया है। इसी प्रकार क्षेपककारों ने भी मनमानी लीलाएँ की हैं। यह काम सर्वथा निन्दनीय है और ऐसे संस्करणों को कभी प्रधानता नहीं देनी चाहिए। कुछ टीकाकारों ने भी मनमाने परिवर्त्तन कर अर्थ में अनर्थ किया है। सौभाग्य ही से अब कुछ सुन्दर और शुद्ध संस्करण प्रकाशित हुए हैं। उनमें काशी नागरी प्रचारिणी सभा और बेलवेडियर प्रेस प्रयाग के संस्करण अच्छे हैं।

मानस

कविकुल चूडामणि गोस्वामी जी के ग्रन्थों में रामचरित मानस का जितना आधिपत्य आर्य्य वंशजों और नागरी भाषियों के हृदय पर है, उतना आधिपत्य अन्य किसी देश के किसी ग्रन्थ का नहीं है। उसकी कविता तो मनोहारिणी है ही, अन्य ग्रन्थों की कविता भी कम सरस नहीं। आपकी पीयूष वर्षिणी कविता के विचार से हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवियों में आपका पद बहुत ऊँचा है। वर्ण-ज्ञान रखनेवालों से लेकर परम विद्वान् तक निज सामर्थ्य के अनुसार गोस्वामी जी की कविता

कविता

का रसस्वादन करते हैं। 'सूर सूर तुलसी शशी' की प्रसिद्ध उक्ति के प्रचलित होते हुए भी, मेरे विचार में कई विषयों में गोस्वामी जी सूर से श्रेष्ठ जँचते हैं और 'तुलसी सूरज सूर विधु' की उक्ति ठीक जान पड़ती है, यदि सूर और शशि का प्रयोग बड़े-छोटे के भेद विचार से किया गया हो। गोस्वामी जी की कविता स्वाभाविक, ओजपूर्ण, सरस, सरल, अगाध, हृदयहारिणी, सुविचारपूर्ण और काव्यगुणालंकृत है। आपकी कवित्व शक्ति की स्थापना में किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं, ख्याति और सर्वप्रियता आप ही आपकी कविता-कला की प्रशंसा करती फिरती है। आपकी कविता-कला में संगीत मर्मज्ञता भी मिश्रित हो गई है, जो पत्रिका और गीतावली से प्रस्फुटित होती है।

गोस्वामी जी की भाषा अवधी और बैसवाड़ी थी। तुर्की, अरबी, फारसी, संस्कृत और ठेठ भाषा के भी शब्द इनकी रचना में पाये जाते हैं। ऐसे ही विदेशी शब्दों का प्रयोग किया गया है, जो उस समय बोलचाल में आ गये थे। ग्राम्य शब्दों के भी प्रयोग भद्दे रूप में नहीं हुए हैं, उनसे भाषा की रोचकता ही बढ़ी है। आपकी भाषा बाह्याडम्बर से रहित थी। आपने न अनुप्रास का अधिक आदर किया, न जमक के बाहुल्य से पाण्डित्य प्रदर्शित करने का भाव दिखलाया।

भाषा

तुलसी जी भाषा में 'श्री' में तालव्य 'श' का प्रयोग अवश्य करते थे और अन्य स्थान में अधिकतर 'स' ही व्यवहार में लाते थे। ष, व, क्ष और ज्ञ के स्थान में क्रमश ष, ब, ख (छ) और ग्य लिखते थे। य का ज, ण का न प्रयोग अधिक पाया जाता है और अकारान्त शब्दों के अन्त में प्राय 'उ' का योग उनके ग्रन्थों में पाया जाता है। 'स्तुति' और 'स्थान' के पहले 'स' का योग भी किया गया है।

कर्म, सम्प्रदान कारक में 'हि, हिं' का प्रयोग मिलता है। यथा—रामहि, रामहिं, मुनिहिं, 'गुरुहि पूछि, करि कुलविधि काजा'। बहुवचन में 'न, न्ह, न्हि' का प्रयोग है यथा—नारिन, मुनिन्ह, सुरन्हि आदि।

सम्बन्ध कारक में 'के, की' के अतिरिक्त 'केर, केरा, केरे, केरि' का, क, कै, विभक्तियाँ आई हैं। यथा—मिटै न जीवन केर कलेसा। प्रभु कह गरल बंधु सिसि केरा। परहित हानि लाभ जिन्ह केरे। सीता केरि करहु रखवारी। प्रथम भक्ति संतन कर संगा। नीको तुलसी क। उमा संत के इहइ बड़ाई।

सर्वनाम में 'जिहि, जेहि, तिहि, तेहि, जाकर, जाकरि, जास' से सम्बन्ध जताया गया है। यथा—जेहि सुमिरत, जाकरि तें दासी, यह संवाद जास मन भावा, आदि। 'कौन' के लिए 'कवन, कवनु कवनि, और 'क्या' के लिए 'काह, काहा, कि' आये हैं। यथा—मिलै कवन विधि बाला, बरनि कवन बिधि जाइ, सेष अगणित को गनै, होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा, आदि।

क्रिया के प्रयोग में भी कुछ विशेषता पाई जाती है। सम्मति या आज्ञा देने में क्रिया के अन्त में हु, उ, ब, वि, इ, य, य पाये जाते हैं। यथा—तजहु सोच, करउ सो बेगि जो तुम्हहिं सोहाई, सो जानब सतसंग प्रभाऊ, करिअ पाय परि बिनय, मनोरथ पुरइय मोरा, बिनय करिय सागर सन जाई, आदि। भूत काल में होना, ठानना, जाना, करना, लेना, देना आदि के कई रूप पाये जाते हैं। यथा—भा भयउ, भयउँ, ठयउ, ठयो, गयउ, गे, गा, गत, गये, किय, कीन्ह कीन, कृत, लिय, लीन्ह, लीनौ, दियो, दीन्ह, दीन। ल भी जोड़ा गया है। यथा—कोरि गगन पर घायल। प्रेरणार्थक में आव या आ जोड़ा गया है। यथा—अन्हवावा, बनावा आदि। संयुक्त क्रिया का प्रयोग भी खूब हुआ है। यथा—सजि बनाजा आदि। संयुक्त क्रिया का प्रयोग भी खूब हुआ है। यथा अन्हवावा जाई, लेत झुलाई चलि आवा, चाहौं कीन्हा, खोजन लागा, चाहहु सुनै, बरजै लागे, लाग कहइ, बरनय लागा आदि।

मानव समाज के सुख, शान्ति और उन्नति का इच्छुक कवि अपनी कविता को वैसी कल्पना के आवरण से भूषित नहीं करता, जो वास्तव

समाज आदर्श और मानव-चरित्र चित्रण

जगत् में नहीं पाई जाती, जिसका स्थित्व मानव-जीवन के प्रति दिवस की घटनाओं में नहीं होता और जिसके आदि अन्त कवि कल्पना में ही हो जाते हैं। गोस्वामीजी की कविता भी मानव समाज के कल्याण के विचार से ही हुई है। अतएव समाज के सामने उसके सुख शान्ति और पूर्णोन्नति के लिए एक आदर्श खड़ा करते हुए तुलसीदास ने अपने प्रधान पात्र के चरित्र का चित्रण इस उत्तमता से किया है कि मनुष्य मात्र का मस्तक उनकी आसता के आगे झुक जाता है और वे उन्हें अपना आदर्श मानने लग जाते हैं। अन्य पात्रों के चरित्र का चित्रण भी उस समाज कल्याण चिन्तक महाकवि ने वैसी ही कुशलता से किया है। उस कुशलता का थोड़ा परिचय नीचे प्रधान पात्रों के संक्षिप्त चरित्र चित्रण से मिल सकता है—

दशरथ—राजा दशरथ धर्मात्मा, न्यायी और प्रतापी थे। अन्य विद्याओं में निपुण होने के अतिरिक्त वह अस्त्र विद्या और धनुर्वेद में सिद्धहस्त थे, जो ब्राह्मणों के भक्त थे। राज्य में सुशासन से शान्ति थी, वनों में तपस्वी शान्ति से तपश्चर्या करते थे। तो भी इनमें कुछ कम जोरियाँ थीं, जो पद के अनुसार ठीक नहीं थीं। राजा में धीरता और दूरदर्शिता का अभाव था। अपार सम्पत्ति के स्वामी होते भी वह पुत्र-चिन्ता से व्याकुल रहते थे। चौथेपन में पुत्र हुए भी तो "किसी को बैंगन पथ्य किसी को पित्त" वाली बात चरितार्थ हुई। दूरदर्शी न होने के कारण कैकेयी से प्रसन्न हो उसे प्रसन्न रखने के लिए साधारण पुरुष की नाई दो वर देने की प्रतिज्ञा उन्होंने कर दी। उन वरों के कैकेयी से माँगे जाने पर राम के वनवास की बात उन्हें असह्य हो गई और वह अबोध कायर की भाँति व्याकुल हो बलबलाने लगे, रोने लगे और बेबस हो गये। कैकेयी की निर्दयता पर तब मानों उन्हें बोध हुआ—

करने अवसर का भयउ, गयउँ नारि विश्वास।
जोग सिद्धि-फल समय जिमि, जतिहि अविद्या नास॥

'उत्कट पुत्र-स्नेह और सत्यप्रियता' के सिवा विलास वासना की मात्रा भी दशरथ में पूरी थी। वृद्धावस्था तक विवाह करते जाने का यही कारण था। इस अनुचित काम का फल भी उन्हें वैसा ही मिला। अपमान हुआ और असामयिक मृत्यु के शिकार हुए। शिकार में निर्दोष जीवों की हत्या करने का भी दैवी फल उन्हें भोगना पड़ा और निर्दोष अन्ध-सुत की हत्या का पाप लगा। रामाभिषेक के समय भरत के न बुलाने में भी कपट का भाव वर्त्तमान पाया जाता है।

जनक—राजा जनक राज्य शासन और प्रजा पालन करते हुए भी पारलौकिक आनन्द के लिये धर्म्मकार्य्य में रत रहते थे। गृहस्थाश्रम में भी वह ज्ञानी थे, योगी थे। उनका ज्ञान साधारण नहीं था, बड़े बड़े योगी उनके यहाँ ज्ञान प्राप्ति के लिए जाते थे। उनका हृदय, आचार और विचार विमल था। 'भरत कथा भव-बंध विमोचनि' कह कर भरत का चरित्र जनक ने निश्छल भाव से स्वीकार कर अपने सूक्ष्म ज्ञान का परिचय दिया है।

"भरत चरित कीरति करतूती, धरमशील गुन विमल विभूति।
समुझत सुनत सुखद सनकाहू, सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥"

विश्वामित्र—इनका चरित्र सामाजिक नियमों में से एक इस बड़े नियम का उदाहरण है कि किसी कुल का उत्पन्न अपनी विद्या, बुद्धि, बल, तेज और ज्ञान से उच्च कुल वालों की पंक्ति में बैठ सकता है। विश्वामित्र ने अपनी प्रतिभा और तप-बल से क्षत्रिय होकर राजर्षि और महर्षि का पद प्राप्त किया। वह साधुता से काम नहीं चलने के स्थान में कोपानल से भी काम लिया करते थे।

रामचन्द्र—मर्य्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी का चरित्र सब प्रकार

से आदर्श है। रामायण की रचना ही उनके सद्‌गुणों के दर्शन कराने के निमित्त की गई है। रामायण के अध्ययन से राम धर्म्म के अवतार जान पड़ते हैं और पापावतार रावण से उन्हें युद्ध करना पड़ा। वह सत्यनिष्ठ, धर्म्मज्ञ और सर्वप्रिय थे। उनकी मञ्जुल मूर्त्ति में मनमोहिनी शक्ति थी, अतएव जो उनके शान्त ज्योतिष्मान् मुखमण्डल को देखता, वही उनपर श्रद्धा करने लगता। विश्वामित्र उन्हें देखकर मुग्ध रहते थे, परशुराम का हृदय शीतल हो गया था, जनक अपने को कृतार्थ समझते थे। जनकपुर के निवासी उनके दर्शन से अपना सौभाग्य मानते थे, वन गमन के समय मार्ग के नारी नर चकित हो जाते थे और जंगली प्रान्तों के निवासी भी उन्हें देवता मानते थे। वह निरभिमान थे, स्वभाव सरल था और गुरु जनों की आज्ञा के पालन में सर्वदा कटि-बद्ध रहते थे। आप वीर थे, धीर थे, गभीर थे। ब्राह्मणों के प्रति आपके हृदय में अपार भक्ति थी, तभी परशुराम के क्रोध और दुर्वाक्य वर्षा पर भी हँसते हुए कहते रहे—"जेहि रिस जाइ करिय सोइ स्वामी, मोहि जानिय आपन अनुगामी।"

आपके चरित्र में पितृ भक्ति, मातृ भक्ति और गुरु भक्ति के अनेक उदाहरण हैं। भ्रातृ भक्ति के भी उनसे कम उदाहरण नहीं हैं। अपने भाइयों को वह प्राणों से अधिक चाहते थे। भरत के वन में पहुँचने पर रामचन्द्र प्रेम से इतना गद्गद हो उठे थे कि—"कहुँ धनु, कहुँ निखग, कहुँ तीरा।" लंका में लक्ष्मण को शक्ति लगने पर विलाप करते हुए आपने हृदय का भाव व्यक्त किया—

जथा पङ्ख बिनु खग अति दीना, मणि बिनु फनि करिबर कर हीना।
अस मम जिवन बन्धु बिनु तोही, जौं जड़ दैव जियावइ मोही॥
जैहउँ अवध कवन मुँह लाई, नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं, नारि हानि बिशेष छति नाहीं॥

आप भक्त-वत्सल भी वैसे ही थे। आप में शील, सकोच और दया

की भी पूरी मात्रा थी। आप कृतज्ञता से दबे रहते। इसी से हनुमान से कहा था—"प्रति उपकार करउँ का तोरा, सनमुख है न सकत मुख मोरा।"

शरणागत की रक्षा में आप कुछ उठा नहीं रखते थे। आपने सुग्रीव की भी पूरी सहायता की और विभीषण की भी। आपकी प्रतिज्ञा भी थी—
"कोटि विप्र अघ लागइ जेही, आए सरन न त्यागउँ तेही।"

अनुचित कामों के समर्थन की ओर आपका ध्यान भूल कर भी नहीं जाता था, बल्कि आप क्रुद्ध हो उठते थे। अनुचित, अधर्म और अन्याय करनेवालों को समुचित दण्ड देना आपका सिद्धान्त था। इसी से बालि का नाश किया और अधर्म्मी रावण तथा उसके सहयोगियों का। राजा होने पर सुग्रीव कुछ काल के लिए उन्हें भूल गया था। वहाँ आपको क्रोध हो आया और कहा—

"सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी, पावा राज, कोष, पुर, नारी।
जेहि सायक मैं मारा बाली, तेहि सर हतउँ मूढ कहँ काली॥"

भरत—भरत का चरित्र रामायण में अति उन्नत है और उनके चरित्र पर प्रकाश डालनेवाली बातें बाहुल्य मे वर्त्तमान हैं। गोस्वामीजी ने स्पष्ट शब्दों में भरत का चरित्र चित्रित किया है। इसी चित्रण से अयोध्या काण्ड का उत्तरार्द्ध भरा पड़ा है। रामचन्द्र और भरत में अलौकिक प्रेम था, साथ ही भरत में अपूर्व और अनुपम आत्मत्याग भी था। ऐसा आत्म-त्याग पृथ्वी के किसी देश के साहित्य में नहीं मिलता। जिस राज्य के लिए संसार के इतिहास में बड़े बड़े वीभत्स और घृणित काण्ड हो गये हैं, उस राज्य को पाकर भी भरत ने तृणवत् समझा और राम तथा भरत दो भाइयों ने गेंद बनाकर बीच में ठुकराया। भरत के निश्छल व्यवहार, स्वार्थ-त्याग, निरभिमान भ्रातृभक्ति आदि गुणों की प्रशंसा सब ने की है। बल भी भरत में असीम था। हनुमान के भू-पतित होने पर शीघ्रता से भेजने के निमित्त

भरत ने कहा था— "चढु मम सायक सैल समेता।" राजा दशरथ ने कैकेयी को बुरा भला कहते समय कहा था—"चहत न भरत भूपपद भोरे।" सरस्वती ने इन्द्र को समझाते हुए कहा था—

मोसन कहत भरत-मति फेरू, लोचन सहस न सूझ सुमेरू।

भरत के चित्रकूट आगमन के अवसर पर लक्ष्मण को कुछ संदेह हो आया और भरत के प्रति क्रोध उत्पन्न हुआ। लक्ष्मन ने कर जोड़ कर प्रार्थना की—"भरतहिं समर सिखावन देऊँ।" इस पर रामचन्द्र ने उन्हें शान्त किया और उनका संदेह दूर करते हुए समझाया—

"भरतहिं होइ न राजमदु, विधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीर सिन्धु विनसाइ॥"

इतना ही नहीं, और भी जोरदार शब्दों में वह भरत का स्वभाव प्रदर्शित करते हैं और लक्ष्मण को विश्वास दिलाते हैं—

"मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई, होहि न नृपमद भरतहिं भाई।
लखन तुम्हार सपथ पितु आना, सुचि सुबंध नहिं भरत समाना॥"

राजा जनक ने भी भरत के स्वभाव की प्रशंसा करते हुए ऐसी ही बड़ाई की है। यथा—

"भरत अमित महिमा सुनु रानी,
जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥"

और कवि का क्या कहना है। गोस्वामीजी ने तो यहाँ तक कह दिया है—

"अगम सनेह भरत रघुबर को,
जहँ न जात मन बिधि हरि हर को॥

लक्ष्मण—लक्ष्मण का जीवन एक आदर्श वीर का जीवन है, जिसमें न विलास है, न भय, न चिन्ता, न अविचार। आप में राम की असीम भक्ति थी। जिस समय रामचन्द्र के वन जाने की बात उनके कानों में

पहुँचती है, वह अधीर हो उठते और व्याकुल वदन अपने पूज्य भाई के पास दौड़े जाते हैं। तब की उनकी दशा कही नहीं जाती। गोस्वामी जी ने लिखा है—

"कहि न सकत कछु चितवत ठाढे।
दीन मीन जनु जल ते काढे॥
सोच हृदय विधि का होनिहारा।
सब सुख सुकृत सिरा न हमारा॥

आप कर्मवीर थे। व्यर्थ प्रलाप से आपको घृणा थी। न आप अपने बाहुबल की उपेक्षा कर दूसरों का मुँह ताकना पसन्द करते थे। समुद्र पार करने के समय विभीषण के सागर से विनय करने पर जब राम ने कहा—"करिय दइब जौं होय सहाई" लक्ष्मण का मुखमण्डल तमतमा आया, क्योंकि वह भाग्य वाद की कायरता को कभी स्वीकार नहीं करते थे। लक्ष्मण ने तुरन्त वीरत्वपूर्ण सम्मति दी—

"नाथ दैव कर कौन भरोसा।
सोखिय सिन्धु करिअ मन रोसा॥
कादर मन कहँ एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा॥

सुमत के सम्मुख भी लक्ष्मण को एक बार महाराज दशरथ के अविचार पर क्रोध आ गया और मुख से निकल पड़ा—

"कहँ लगि सहिय रहिय मन मारे,
नाथ साथ धनु हाथ हमारे।'

इसी प्रकार वीर शिरोमणि परशुराम के समक्ष भी इनकी वीरता कुछ भी नहीं दबी, वरन् और भी चमक उठी। परशुराम से बढ़ कर ही

लक्ष्मण ने बातें कहीं। इसी प्रकार भरत, सुग्रीव और मेघनाद के प्रतिकूल भी लक्ष्मण ने वीरत्वपूर्ण वचन कहे हैं।

कौशल्या—कौशल्या में जितना ही पुत्र प्रेम था, उतनी ही पतिभक्ति। उसने दोनों का आजीवन निर्वाह किया। यद्यपि कौशल्या के प्रति दशरथ का प्रेम कम हो गया था और दशरथ कैकेयी के प्रेम के दास बने थे, तथापि कैकेयी द्वारा राम को वनवास मिलने पर वह राम को शिक्षा देती है—

"जो पितु-मातु कहेँ वन जाना, तो कानन सत अवध समाना।"

इस उपदेश से उसके हृदय की धीरता और गम्भीरता स्पष्टत प्रकट होती है। माता का हृदय पुत्र प्रेम से कैसे विह्वल हो उठता है और पतिभक्ति की मर्यादा उसे किस दृढ़ता से निबाहनी पड़ती है, इसे वह राम पर सच्चे हृदय से व्यक्त करती है। कहती है—

"राखि न सकइ न कहि सक जाहू, दुहूँ भाँति उर दारुण दाहू।
धरम सनेह उभय मति घेरी, भइ गति साँप छुछुंदरि केरी॥
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू, धरम जाइ अरु बंधु विरोधू।
कहउँ जान वन तौ बड़ि हानी, . ॥"

भरत से कोई द्वेष या बुरा भाव कौशिल्या के हृदय में नहीं था। वह राम और भरत को सम जानती थी। उन्होंने भरत को राज्य स्वीकार करने के लिए भी बहुत तरह से कहा था और राम वियोग से दुःखित भरत की चिन्ता उन्हें बहुत थी। कहा भी था—"मोहिं भरत कर सोच।"

सुमित्रा—सौत के पुत्र के प्रति जिस प्रेम से साधारण घरों में स्वर्गीय प्रेम का साम्राज्य स्थापित हो सकता है, वह प्रेम सुमित्रा के हृदय में पाया जाता है। राम के प्रति सुमित्रा का जो भाव था, वह सर्वथा सराहनीय है। राज्य का झगड़ा कौशल्या और कैकेयी के पुत्रों के बीच था और वनवास की आज्ञा राम को मिली थी। उस अवस्था में

का दुःख सुमित्रा किस प्रबल वीरता से सहन करती है, यह रामायण के पढ़नेवाले जानते है। उसका मुख तक म्लान नहीं होता। लक्ष्मण के राम के साथ वन जाने की आज्ञा माँगने पर वह झिड़कियाँ देती हुई आज्ञा देती है—

"तात तुम्हारि मातु वैदेही, पिता रामु सब भाँति सनेही।
अवध तहाँ जहँ राम निवासू, तहइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू।
जौं पे सीय रामु बन जाहीं, अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥"

कैकेयी—सौत भावजनित द्वेष से कितने घर वन हो गए। उसी भाव की प्रतिमा कैकेयी है। उसकी बुद्धि ओछी थी और हृदय सकीर्ण था। उच्च कुल में होने के कारण मन्थरा से राम के राज्याभिषेक का समाचार सुन वह आनन्दित हुई और बोल उठी—

"राम तिलकु जौं साँचेहु काली, देउँ माँगु मन भावत आली।"

यहाँ तक कह गई—"प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरे।" कौशिल्या तथा सीता की भी कम प्रशसा नहीं की। परन्तु यह प्रशसा बाह्य प्रशसा मात्र थी, क्योंकि उसके हृदय को एक सदेह लगा था कि इस हर्ष काल में मथरा के विषाद में क्या कोई रहस्य है। उससे वह आग्रह करके पूछती भी है और मन्थरा की मन्त्रणा के अनुसार तुरत कार्य कर दिखाती है। पहले की प्रशसा का कारण भी उसी के मुख से मालूम होता है। वह कारण, वह रानी होने के कारण जानती थी—

"जेठ स्वामि, सेवक लघु भाई,
यहु दिन कर-कुल रीति सुहाई।"

कैकयी को कोई ऐसी बात पहले नहीं सूझी थी जिसमे कुल रीति के विरुद्ध राज्य भरत को मिलता। जब मन्थरा ने बताया 'राजहि तुम्ह पर प्रेम विसेखी', अतएव हे कैकेयी।

दुइ वरदान भूप सन थाती, माँगहु आजु जुड़ावहु छाती,
सुतहिं राजु रामहिं वनवासू, देहु लेहु सब सवति हुलासू।
भूपति राम सपथ जब करई, तव माँगेहुँ जेहि बचनु न टरई,
होइ अकाजु आजु निसि बीतें, बचनु मोर प्रिय मानहु जी तें॥

कैकेयी को सुधि हुई और वह कपट नाटक के खेलने के लिए तय्यार हो गई। अब उसे और कुछ नहीं रुचता। उसे एक लालसा है, एक हठ है और एक लक्ष्य है। वह है भरत के लिए अयोध्या का राज्य। इसी धुन में वह मस्त है, तल्लीन है, मतवाली है और अंधी है। पीछे का उसे कोई ध्यान नहीं रहा। उसने दशरथ से अपने वरदान माँगे और उसी के फल स्वरूप दशरथ की मृत्यु हुई और राम को वनवास।

सीता—सती साध्वी सीता के चरित्र में आदर्श पातिव्रत के भाव वर्तमान हैं। सीता अपने पति देव से विलग रहने मे असमर्थ थीं। राम ने विविध प्रकार से सीता को जंगल के कष्ट बतलाये किन्तु सीता को उनपर ध्यान देने का अवसर कहाँ था? अवसर था भी तो प्रयोजन क्या था? राजसुखों के प्रलोभन दिखाने पर सीता ने अपने हृदय का भाव और स्त्री पति के क्षेम का सार राम के समक्ष रखते हुए निवेदन किया—

"जिय बिनु देह नदी बिनु वारी, तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे, सरद-विमल विधु वदनु निहारे॥

सीता के इस निवेदन ने—"हंसगमनि तुम्ह नहिं बन जोगू, सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू" की समस्या रखनेवाले राम को भी साथ ले चलने पर बाध्य कर दिया। इस अवसर के संवाद में जैसा भाव गोस्वामी जी ने चित्रित किया है, वैसा किसी अन्य कवि की कविता में स्यात् ही मिल सकता हो।

रावण—राम का प्रधान शत्रु रावण अधर्म्म का रूप था, तो भी वीर

और नीतिज्ञ था। किसी से दबना, शङ्का से विचलित होना, दूसरे का दर्प सह लेना, कार्यारम्भ करके पीछे पैर देना और प्राण सङ्कटापन्न पाकर शत्रु को मनाना या शीश झुकाना उसके स्वभाव के प्रतिकूल था। इसी स्वभाव के कारण वह मरते दम तक कहता रहा—"कहाँ राम रन हतौं प्रचारी।" आपत्ति की सूचना मिलने पर भी वह घबराता नहीं था और धीर बना रहता था। अंगद के आगमन पर सभा में उसका मुकुट गिर पड़ने पर उसकी सभा के सदस्य कुछ घबरा गए, पर वह धीरता और चतुरता से बोल उठा—

"सिरहु गिरे संतत शुभ जाही, मुकुट गिरे कस असगुन ताही?"

रावण की शूरता और धीरता परले सिरे की थी। न उसे राम से भय था, न राम की सेना से। युद्ध काल में भी, जब नित्य उसकी सेना का संहार होता जाता था और एक से एक वीर मारे जाते थे, वह आनन्द ही मनाता रहा। सब वीरों के मारे जाने पर भी उसने अशंक और अचल भाव से कहा—

"निज भुज-बल मैं बैर बढ़ावा, देहों उतर जो रिपु चढ़ि आवा।"

इतने पर भी वह अधर्म के कारण अपमान और घृणा का भागी रहा। उसे धर्माधर्म का विचार न था, अन्याय से घबराना वह नहीं जानता था, दूसरों पर द्रवित होना उसकी प्रकृति के प्रतिकूल था, अतुल सम्पत्ति का स्वामी होते भी लूट से पराये का धन हरना उसे प्रिय था, और विश्वासघात करना उसके लिए बहुत सहज था। दुराचारी, स्वार्थी, कपटी, व्यभिचारी और अत्याचारी राजा के राज्य में प्रजा की जो दुर्दशा होती है, वही अवस्था रावण की प्रजा की थी। रावण को प्रजा के दुखों का ध्यान नहीं था। वह आप ऐश में मस्त रहता था। गो विप्रों को असामान्य कष्ट था और वन के तपस्वी मुनियों पर भी असह्य कर था। काम के वश में रावण अपनी मर्य्यादा भूल जाता था, और अबलाओं

पर अत्याचार करते हुए उसे अपनी नश्वरता का ध्यान नहीं रहता था। उच्च कुलोत्पन्न पर अभिमानी और अत्याचारी रावण को पीछे अपने दुष्कर्मों का ऐसा बुरा फल भोगना पड़ा कि उसके कुल में कोई नाम-लेवा पानी देवा भी नहीं बचा।

हनुमान—महावीर हनुमान की इतनी अचल भक्ति राम पर थी कि राम ही उनके स्वामी, पिता, ईश्वर, सर्वस्व थे। उधर महावीर को राम भी लक्ष्मण से किसी प्रकार कम नहीं मानते थे। स्वामी के हित में कठिन से कठिन काम भी महावीर ने अपने हाथों में लिया और बात की बात में समाप्त किया। 'जो होवे उत्तम प्रकृति, का करि सकै कुसंग' के कथन का प्रमाण बजरंगबली की जीवनी है। वह कपीश्वर के सेनापति थे, सचिव थे। आप भी वानर जाति के थे। कामी और स्वार्थी सुग्रीव से उनका बराबर साथ रहा, किन्तु उनके चरित्र में कोई अन्तर नहीं आया। वानर नामक जंगली जाति के होते हुए भी वह निर्भीक बली, ज्ञानी और नीतिज्ञ थे। उनका चरित्र स्पष्टत बतलाता है कि छोटे कुलों में जन्म लेकर भी निश्चय ही पुरुष नीच नहीं होते, न वे घृणा के पात्र हैं।

विभीषण—रावण से बिगड़कर विभीषण ने राम का आश्रय लिया और निशाचरों के नाश में पूरा योग दिया। रावण से बिगड़कर श्रीरामचन्द्रजी के पास आने और भेदों के बताने के कारण आलोचक विभीषण को मतलबी और भ्रातृद्रोही मानते हैं। पर मेरे विचार में विभीषण का चरित्र ऐसा नीच नहीं था, न यही कहा जा सकता है कि विभीषण ने राम का आश्रय लङ्का के राज्य के लिए लिया था। पीछे लङ्का का राज्य उन्हें भले ही प्राप्त हुआ। विभीषण के व्यवहार में मनुष्य हृदय का एक अकृत्रिम भाव पाया जाता है। जिसकी जैसी प्रकृति होती है, उसको वैसा ही सङ्ग अच्छा लगता है। विभीषण को रावण के दुष्कर्म अच्छे नहीं लगते थे। उनकी दृष्टि में रावण पापी था। पाप से विरक्त हो अच्छे काम की सम्मति पर रावण को क्रोध होता था। विभीषण ने रावण को भली

सम्मति दी। उसपर रावण ने उसका अपमान किया और लात मारकर निकाल बाहर किया। बन्धुकृत अपमान के सहनेवाले नररत्न ही होते हैं, साधारण पुरुष का हृदय सदा अपमान का सहन धैर्यपूर्वक नहीं कर सकता। यही दशा विभीषण की भी थी। विभीषण को सत्य और धर्म्म प्रिय था। वह धर्म्म के उपासक थे। रावण पापात्मा था, पाप का अवतार था। धर्म्मोपासक विभीषण ने अन्त में पापात्मा का संग छोड़ना उत्तम समझा। तब धर्म्मावतार राम से मिलने का संयोग आ उपस्थित हुआ। असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण किसे प्रिय नहीं होता!

कुम्भकर्ण—रावण का भाई कुम्भकर्ण राक्षसों के ही बीच रहता था। उसने बराबर रावण का साथ दिया, तो भी वह लम्पट, मायावी और कपटी नहीं था। वह वीर था, उसे वीरता प्रिय थी और वीरता से शत्रुओं का सामना करना उसका सिद्धान्त रहा। छल से युद्ध करना वह कायरता और नीचता समझता था। उसकी वीरता राम से उसकी निःशंक लड़ाई से प्रकट होती है। विभीषण से कुम्भकर्ण में अंतर यही था कि कुम्भकर्ण अपनी अवस्था को उन्नत बनाने की इच्छा नहीं रखता था और बली होते भी राक्षसी कर्म्म में निश्चिन्त रहता था। किन्तु रावण से उसका चरित्र उन्नत था। युद्ध के पहले उसने रावण के बुरे कर्म पर भी उसे भला बुरा सुनाया और साफ कह दिया—"जगदम्बा हरि आनि अब सठु चाहतु कल्यान।" अत्यन्त आलसी और निद्रालु होने के कारण उसके हृदय से उत्साह और शुभ कर्मों की आकांक्षा का वेग मंद पड़ गया था। किन्तु वह कामी नहीं था और विषय भोग से बचा रहा। सभा-चतुर होते भी 'मांस और मदिरा' में लिप्त अपना काल्यापन किया करता था। इतने पर भी उसके हृदय में कुछ अच्छे भाव थे। बन्धुत्व और सज्जन सेवा का महत्व वह भली भाँति जानता था। तभी रावण को समझाया—

"अजहूँ तात त्यागि अभिमाना, भजहु राम होइहि कल्याना।
अहह बन्धु तें कीन्हि खोटाई, प्रथमहिं मोहि न सुनायेहि आई॥

पर अत्याचार करते हुए उसे अपनी नश्वरता का ध्यान नहीं रहता था। उच्च कुलोत्पन्न पर अभिमानी और अत्याचारी रावण को पीछे अपने दुष्कर्मों का ऐसा बुरा फल भोगना पड़ा कि उसके कुल में कोई नाम-लेवा पानी देवा भी नहीं बचा।

हनुमान—महावीर हनुमान की इतनी अचल भक्ति राम पर थी कि राम ही उनके स्वामी, पिता, ईश्वर, सर्वस्व थे। उधर महावीर को राम भी लक्ष्मण से किसी प्रकार कम नहीं मानते थे। स्वामी के हित में कठिन से कठिन काम भी महावीर ने अपने हाथों में लिया और बात की बात में समाप्त किया। 'जो होवे उत्तम प्रकृति, का करि सकै कुसंग' के कथन का प्रमाण बजरंगबली की जीवनी है। वह कपीश्वर के सेनापति थे, सचिव थे। आप भी वानर जाति के थे। कामी और स्वार्थी सुग्रीव से उनका बराबर साथ रहा, किन्तु उनके चरित्र में कोई अन्तर नहीं आया। वानर नामक जंगली जाति के होते हुए भी वह निर्भीक बली, ज्ञानी और नीतिज्ञ थे। उनका चरित्र स्पष्टतः बतलाता है कि छोटे कुलों में जन्म लेकर भी निश्चय ही पुरुष नीच नहीं होते, न वे घृणा के पात्र हैं।

विभीषण—रावण से बिगड़कर विभीषण ने राम का आश्रय लिया और निशाचरों के नाश में पूरा योग दिया। रावण से बिगड़कर श्रीरामचन्द्रजी के पास जाने और भेदों के बताने के कारण आलोचक विभीषण को मतलबी और भ्रातृद्रोही मानते हैं। पर मेरे विचार में विभीषण का चरित्र ऐसा नीच नहीं था, न यही कहा जा सकता है कि विभीषण ने राम का आश्रय लङ्का के राज्य के लिए लिया था। पीछे लङ्का का राज्य उन्हें भले ही प्राप्त हुआ। विभीषण के व्यवहार में मनुष्य हृदय का एक अकृत्रिम भाव पाया जाता है। जिसकी जैसी प्रकृति होती है, उसको वैसा ही संग अच्छा लगता है। विभीषण को रावण के दुष्कर्म अच्छे नहीं लगते थे। उनकी दृष्टि में रावण पापी था। पाप से विरक्त हो अच्छे काम की सम्मति पर रावण को कोप होता था। विभीषण ने रावण को भली

सम्मति दी। उसपर रावण ने उसका अपमान किया और लात मारकर निकाल बाहर किया। बन्धुकृत अपमान के सहनेवाले नररत्न ही होते हैं, साधारण पुरुष का हृदय सदा अपमान का सहन धैर्यपूर्वक नहीं कर सकता। यही दशा विभीषण की भी थी। विभीषण को सत्य और धर्म्म प्रिय था। वह धर्म्म के उपासक थे। रावण पापात्मा था, पाप का अवतार था। धर्म्मोपासक विभीषण ने अन्त में पापात्मा का संग छोड़ना उत्तम समझा। तब धर्म्मावतार राम से मिलने का संयोग आ उपस्थित हुआ। असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण किसे प्रिय नहीं होता!

कुम्भकर्ण—रावण का भाई कुम्भकर्ण राक्षसों के ही बीच रहता था। उसने बराबर रावण का साथ दिया, तो भी वह लम्पट, मायावी और कपटी नहीं था। वह वीर था, उसे वीरता प्रिय थी और वीरता से शत्रुओं का सामना करना उसका सिद्धान्त रहा। छल से युद्ध करना वह कायरता और नीचता समझता था। उसकी वीरता राम से उसकी निःशंक लड़ाई से प्रकट होती है। विभीषण से कुम्भकर्ण में अंतर यही था कि कुम्भकर्ण अपनी अवस्था को उन्नत बनाने की इच्छा नहीं रखता था और बली होते भी राक्षसी कर्म्म में निश्चिन्त रहता था। किन्तु रावण से उसका चरित्र उन्नत था। युद्ध के पहले उसने रावण के बुरे कर्म पर भी उसे भला बुरा सुनाया और साफ कह दिया—"जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान।" अत्यन्त आलसी और निद्रालु होने के कारण उसके हृदय से उत्साह और शुभ कर्मों की आकांक्षा का वेग मंद पड़ गया था। किन्तु वह कामी नहीं था और विषय भोग से बचा रहा। सभा-चतुर होते भी 'मांस और मदिरा' में लिप्त अपना काल्यापन किया करता था। इतने पर भी उसके हृदय में कुछ अच्छे भाव थे। बन्धुत्व और सज्जन सेवा का महत्व वह भली भाँति जानता था। तभी रावण को समझाया—

"अजहूँ तात त्यागि अभिमाना, भजहु राम होइहि कल्याना।
अहह बन्धु तैं कीन्हि खोटाई, प्रथमहिं मोहि न सुनायेहि आई॥

पर अत्याचार करते हुए उसे अपनी नश्वरता का ध्यान नहीं रहता था। उच्च कुलोत्पन्न पर अभिमानी और अत्याचारी रावण को पीछे अपने दुष्कर्मों का ऐसा बुरा फल भोगना पड़ा कि उसके कुल में कोई नाम-लेवा पानी देवा भी नहीं बचा।

हनुमान—महावीर हनुमान की इतनी अचल भक्ति राम पर थी कि राम ही उनके स्वामी, पिता, ईश्वर, सर्वस्व थे। उधर महावीर को राम भी लक्ष्मण से किसी प्रकार कम नहीं मानते थे। स्वामी के हित में कठिन से कठिन काम भी महावीर ने अपने हाथों म लिया और बात की बात में समाप्त किया। 'जो होवे उत्तम प्रकृति, का करि सके कुसंग' के कथन का प्रमाण बजरंग-बली की जीवनी है। वह कपीश्वर के सेनापति थे, सचिव थे। आप भी वानर जाति के थे। कामी और स्वार्थी सुग्रीव से उनका बराबर साथ रहा, किन्तु उनके चरित्र में कोई अन्तर नहीं आया। वानर नामक जंगली जाति के होते हुए भी वह निर्भीक बली, ज्ञानी और नीतिज्ञ थे। उनका चरित्र स्पष्ट बतलाता है कि छोटे कुलों में जन्म लेकर भी निश्चय ही पुरुष नीच नहीं होते, न वे घृणा के पात्र हैं।

विभीषण—रावण से बिगड़कर विभीषण ने राम का आश्रय लिया और निशाचरों के नाश में पूरा योग दिया। रावण से बिगड़कर श्रीरामचन्द्रजी के पास आने और भेदों के बताने के कारण आलोचक विभीषण को मतलबी और भ्रातृद्रोही मानते हैं। पर मेरे विचार में विभीषण का चरित्र ऐसा नीच नहीं था, न यही कहा जा सकता है कि विभीषण ने राम का आश्रय लङ्का के राज्य के लिए लिया था। पीछे लङ्का का राज्य उन्हें भले ही प्राप्त हुआ। विभीषण के व्यवहार में मनुष्य हृदय का एक अकृत्रिम भाव पाया जाता है। जिसकी जैसी प्रकृति होती है, उसको वैसा ही संग अच्छा लगता है। विभीषण को रावण के दुष्कर्म अच्छे नहीं लगते थे। उनकी दृष्टि में रावण पापी था। पाप से विरक्त हो अच्छे काम की सम्मति पर रावण को क्रोध होता था। विभीषण ने रावण को भली

सम्मति दी। उसपर रावण ने उसका अपमान किया और लात मारकर निकाल बाहर किया। बंधुकृत अपमान के सहनेवाले नररत्न ही होते हैं, साधारण पुरुष का हृदय सदा अपमान का सहन धैर्यपूर्वक नहीं कर सकता। यही दशा विभीषण की भी थी। विभीषण को सत्य और धर्म्म प्रिय था। वह धर्म्म के उपासक थे। रावण पापात्मा था, पाप का अवतार था। धर्म्मोपासक विभीषण ने अन्त में पापात्मा का संग छोड़ना उत्तम समझा। तब धर्म्मावतार राम से मिलने का संयोग आ उपस्थित हुआ। असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण किसे प्रिय नहीं होता!

कुम्भकर्ण—रावण का भाई कुम्भकर्ण राक्षसों के ही बीच रहता था। उसने बराबर रावण का साथ दिया, तो भी वह लम्पट, मायावी और कपटी नहीं था। वह वीर था, उसे वीरता प्रिय थी और वीरता से शत्रुओं का सामना करना उसका सिद्धान्त रहा। छल से युद्ध करना वह कायरता और नीचता समझता था। उसकी वीरता राम से उसकी निःशंक लड़ाई से प्रकट होती है। विभीषण से कुम्भकर्ण में अंतर यही था कि कुम्भकर्ण अपनी अवस्था को उन्नत बनाने की इच्छा नहीं रखता था और बली होते भी राक्षसी कर्म्म में निश्चिन्त रहता था। किन्तु रावण से उसका चरित्र उन्नत था। युद्ध के पहले उसने रावण के बुरे कर्म पर भी उसे भला बुरा सुनाया और साफ कह दिया—"जगदम्बा हरि आनि जब सठ चाहत कल्यान।" अत्यन्त आलसी और निद्रालु होने के कारण उसके हृदय से उत्साह और शुभ कर्मों की आकांक्षा का वेग मंद पड़ गया था। किन्तु वह कामी नहीं था और विषय भोग से बचा रहा। सभा चतुर होते भी 'मांस और मदिरा' में लिप्त अपना कालयापन किया करता था। इतने पर भी उसके हृदय में कुछ अच्छे भाव थे। बन्धुत्व और सज्जन सेवा का महत्व वह भली भाँति जानता था। तभी रावण को समझाया—

"अजहूँ तात त्यागि अभिमाना, भजहु राम होइहि कल्याना।
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई, प्रथमहिं मोहि न सुनायेहि आई॥

दो०–सुनि समुझहिं जन मुदितमन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधुसमाज प्रयाग ॥१॥
मज्जन फल पेखिय ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला।
सुनि आचरज करै जनि कोई। सत-संगति-महिमा नहिं गोई।
वालमीकि, नारद, घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी।
जलचर, थलचर, नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना।
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई।
सो जानब सत-संग-प्रभाऊ। लोकहु वेद न आन उपाऊ।
बिनु सतसंग विवेकु न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई।
सतसंगति मुद-मंगल-मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला।
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सोहाई।
बिधिबस सुजन कुसंगति परहीं। फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं।
बिधि-हरि-हर-कबि-कोबिद-बानी। कहत साधुमहिमा सकुचानी।
सो मो सन कहि जात न कैसें। साकबनिक मनि-गन गुन जैसें।
दो०–बंदो संत समानचित, हित अनहित नहिं कोउ।
अंजुलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोउ ॥२॥
संत सरलचित जगतहित, जानि सुभाउ सनेहु।
बालबिनय सुनि करि कृपा, राम-चरन-रति देहु ॥ ३ ॥
बहुरि बंदि खलगन सतिभायें। जे बिनु काज दाहिनेहुँ बायें।
पर-हित-हानि लाभ जिन्ह केरे। उजरें हरष बिषाद बसेरे।
हरि हर-जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।
जे परदोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिन्ह के मन माखी।

तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ-अवगुन-धन धनी धनेसा।
उदय केतुसम हित सबही के। कुंभकरन सम सोवत नीके।
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं।
बंदौं खल जस सेष सरोषा। सहसबदन बरनइ परदोषा।
पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना। परअघ सुनइ सहसदस काना।
बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही। संतत सुरानीक हित जेही।
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहसनयन परदोष निहारा।
दो०-उदासीन अरि-मीत हित, सुनत जरहिं खलरीति।
जानि पानिजुग जोरि जन, बिनती करइ सप्रीति॥ ४॥
मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा।
बायस पलिअहिं अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा।
बंदौं संत असंतन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं।
उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं।
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू।
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती।
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलि मल-सरि ब्याधू
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।
दो०-भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरता, गरल सराहिअ मीचु॥ ५॥
खल अघ अगुन साधु गुन-गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा।
तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने।

भलेउ पोच सब विधि उपजाए। गनि गुन दोष वेद बिलगाए।
कहहिं वेद, इतिहास, पुराना। बिधिप्रपञ्चु गुन-अवगुन-साना।
दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती।
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सजीवनु, माहुरु मीचू।
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा।
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा*।
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगम अगम गुन-दोष बिभागा।
दो०–जड़-चेतन गुन-दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारिबिकार॥ ६॥

पुष्प-वाटिका में जनकनन्दिनी और राजकुमार

दो०—उठे लखनु निसिबिगत सुनि, अरुन-सिखा-धुनि कान।
गुर तें पहिलेहि जगतपति, जागे रामु सुजान ॥१॥

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिरनाए।
समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई।
भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसंतरितु रही लोभाई।
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलिबिताना।
नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुररूख लजाए।
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहँग नटत कल मोरा।
मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनिसोपान बिचित्र बनावा।
बिमल सलिल सरसिज बहुरंगा। जलखग कूजत गुंजत भृंगा।

दो०—बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु, हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु यहु, जो रामहिं सुख देत॥२॥

चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन।
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजापूजन जननि पठाई।
संग सखीं सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी।
सर समीप गिरिजागृह सोहा। बरनि न जाइ देखि मन मोहा।
मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरिनिकेता।
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु मागा।

एक सखी सिय संगु विहाई। गई रही देखन फुलवाई।
तेइ दोउ बधु बिलोके जाई। प्रेमविवस सीता पहँ आई।
दो०—तासु दसा देखी सखिन्ह, पुलक गात जलु नयन।
कहु कारन निज हरष कर, पूछहिं सब मृदु बयन॥३॥
देखन बागु कुँवर दोउ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए।
स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।
सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सियहिय अति उतकठा जानी।
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली।
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्ववस नगर नर-नारी।
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहि देखन जोगू।
तासु बचन अति सियहि सुहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने।
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातनि लखै न कोई।
दो०—सुमरि सीय नारदबचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत॥४॥
कंकन-किंकिनि-नूपुर धुनि सुनि। कहत लषनसन रामहृदय गुनि।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्वबिजय कहँ कीन्ही।
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख-ससि भए नयन चकोरा।
भए बिलोचन चारु अचचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगचल।
देखि सीयसोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई।
सुंदरता कहँ सुंदर करई। छबिगृह दीपसिखा जनु बरई।
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहि पटतरौं बिदेहकुमारी।

दो०-सियसोभा हिय बरनि प्रभु, आपनि दसा विचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन, बचन समय-अनुहारि ॥५॥
तात जनक तनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई।
पूजन गौरि सखीं लै आई। करत प्रकास फिरइ फुलवाई।
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा।
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता।
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरै न काऊ।
मोहि अतिसय प्रतीत मन केरी। जेहि सपनेहु परनारि न हेरी।
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं लावहिं परतिय मनु डीठी।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं।
दो०-करत बतकही अनुज सन, मन सियरूप लुभान।
मुख-सरोज-मकरंद-छबि, करै मधुप इव पान ॥६॥
चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृपकिसोर मनु चिंता।
जहँ बिलोक मृग-सावक नयनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी।
लता ओट तब सखिन लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने।
थके नयन रघुपति छबि देखे। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषे।
अधिक सनेह देह भै भोरी। सरद-ससिहि जनु चितव चकोरी।
लोचनमग रामहिं उर आनी। दीन्हे पलककपाट सयानी।
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानीं। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानीं।
दो०-लताभवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ ॥७॥

सोभासींवँ सुभग दोउ बीरा। नील—पीत-जलजात-सरीरा।
मोरपख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुमकली के।
भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छवि छाए।
बिकट भृकुटि कच घूँघरवारे। नवसरोज लोचन रतनारे।
चारु चिबुक नासिका कपोला। हासबिलास लेत मनु मोला।
मुखछबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं।
उर मनिमाल कबुकल ग्रीवाँ। काम-कलभ-कर भुज बलसींवाँ।
सुमनसमेत बाम कर दोना। साँवर कुँअर सखी सुठि लोना।
दो०-केहरिकटि पट पीत धर, सुखमा-सील निधान।
देखि भानु-कुल-भूषनहिं, बिसरा सखै अपान॥ ८॥
धरि धीरजु एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी।
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू।
सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे।
नखसिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पितापन मन अति छोभा।
परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भए गहरु सब कहहिं सभीता।
पुनि आउब एहि बेरियाँ काली। अस कहि मन बिहँसी एक आली
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयेउ बिलंब मातुभय मानी।
धरि बड़ि धीर राम उर आनी। फिरि आपनपौ पितुबस जानी।
दो०-देखन मिस मृग बिहग तरु, फिरै बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीरछबि, बाढ़ै प्रीति न थोरि॥ ९॥
जानि कठिन सिवचाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति।
प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख-सनेह-सोभा गुन खानी।

परम प्रेम-मय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिखि लीन्हीं।
गई भवानी-भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी।
जय जय गिर बर-राज किसोरी। जय महेस-मुख चंद चकोरी।
जय गज-बदन षडानन माता। जगतजननि दामिनि दुति-गाता।
नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव वेद नहिं जाना।
भव भव विभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्व-बस बिहारिनि
दो०-पतिदेवता सुतीय महुँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि, सहस सारदा सेष ॥१०॥
सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायिनि त्रिपुरारि पिआरी।
देवि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे।
मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उरपुर सबही के।
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेही। अस कहि चरन गहे बैदेही।
बिनय प्रेम-बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी।
सादर सिय प्रसाद सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषु उर भरेऊ।
सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मनकामना तुम्हारी।
नारद बचन सदा सुचि साँचा। सो बर मिलिहि जाहि मन राँचा।
छन्द-मन जाहि राँचेउ मिलिहि सो बर सहज सुंदर साँवरो।
करुनानिधान सुजान सीलसनेह जानत रावरो॥
एहि भाँति गौरि असीस सुनि सियसहित हित हरषित अलीं
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मंदिर चलीं॥
सो०-जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हरष न जात कहि।
मंजुल मंगल-मूल, बाम अंग फरकन लगे ॥११॥

हृदय सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई।
राम कहा सब कौसिक पाहीं। सरल सुभाव छुआ छल नाहीं।
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्हीं। पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्हीं॥
सुफल मनोरथ होहु तुम्हारे। राम लषन सुनि भए सुखारे।
करि भोजन मुनिवर विग्यानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी।
विगतदिवस गुरु-आयसु पाई। सन्ध्या करन चले दोउ भाई।
प्राची दिसि ससि उगेउ सुहावा।सिय-मुख-सरिस देखि सुखपावा।
बहुरि बिचार कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं।
दो०–जनक सिंधु पुनि बधु बिष, दिन मलीन सकलङ्क।

सिय मुख समता पाव किमि, चन्द बापुरो रङ्क ॥१२॥

घटै बढ़ै बिरहिनि दुख दाई। ग्रसै राहु निज सन्धिहि पाई।
कोक-सोक-प्रद पंकजद्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही।
वैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे।
सिय मुख-छबि विधुब्याज बखानी। गुरुपहँ चले निसा बड़ि जानी।
करि मुनि-चरन सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह विश्रामा।
विगतनिसा रघुनायक जागे। बधु बिलोकि कहन अस लागे।
उयेउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज-लोक-कोक-सुख दाता।
बोले लषन जोरि जुग पानी। प्रभु-प्रभाउ-सूचक मृदु बानी।
दो०–अरुन उदय सकुचे कुमुद, उडुगन-जोति मलीन।

तिमि तुम्हार आगमन सुनि, भए नृपति बलहीन ॥१३॥

नृप सब नखत करहिं उँजियारी। टारि न सकहिं चापतम भारी।
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा-अवसाना।

ऐसेहि प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटे धनुष सुखारे।
उयेउ भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा।
रवि निज-उदय-ब्याज रघुराया। प्रभुप्रताप सब नृपन्ह दिखाया।
तव भुज बल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी।
बधुबचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ सुचि सहज पुनीत नहाने।
नित्यक्रिया करि गुर पहिं आए। चरनसरोज सुभग सिर नाए।
सतानन्द तब जनक बोलाए। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए।
जनकबिनय तिन्ह आनि सुनाई। हरषे बोलि लिये दोउ भाई।

मन्थरा की मन्त्रणा

दो०—तेहि अवसर आए लषन, मगन प्रेम आनंद।
सनमाने प्रिय वचन कहि, रघु-कुल कैरव चंद ॥ १ ॥
बाजहिं बाजन विविध विधाना। पुरप्रमोदु नहिं जाइ बखाना।
भरतआगमनु सकल मनावहिं। आवहिं बेगि नयनफल पावहिं।
हाट बाट घर गली अथाई। कहहिं परस्पर लोग लोगाई
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा
कनकसिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित-चेता
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली
तिन्हहिं सुहाइ न अवध बधावा। चोरहिं चंदिनि राति न भावा
सारद बोलि विनय सुर करहीं। बारहिं बार पाँय लै परहीं
दो०-विपति हमारि विलोकि बड़ि, मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुरकाजु ॥२
सुनि सुरविनय ठाढ़ि पछिताती। भइउँ सरोजबिपिन हिमराती
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी
विसमय हरष-रहित रघुराऊ। तुम जानहु सब राम प्रभाऊ
जीव करमबस सुख-दुख-भागी। जाइअ अवध देवहित लागी
बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबिधमतिमोच
ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती

आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कवि मोरी।
हरषि हृदय दसरथपुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई।
दो०–नामु मथरा मदमति, चेरी कैकेइ करि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ॥ १२ ॥
दीख मथरा नगरु बनावा। मजुल मगल बाज बधावा।
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। रामतिलकु सुनि भा उरदाहू।
करै बिचार कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवनि बिधि राती।
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकै लेउँ केहि भाँती।
भरतमातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि, कह हँसि रानी।
ऊतर देइ न, लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू।
हँसि कह रानि गालु बड तोरें। दीन्हि लखन सिख, अस मन मोरें।
तबहुँ न बोल चेरि बडि पापिनि। छाँडै स्वास कारि जनु साँपिनि
दो०–सभय रानि कह कहसि किन, कुसल रामु महिपालु।
लखनु भरत रिपुदमनु सुनि, भा कुबरी उर सालु ॥ १४ ॥
कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई।
रामहि छाँडि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु देइ जुबराजू।
भयेउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन।
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा।
पूतु बिदेस, न सोचु तुम्हारें। जानति हहु बस नाहु हमारें।
नींद बहुत, प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट-चतुराई।
सुनि प्रिय बचन मलिनमनु जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी।
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढावौं तोरी।

दो०-काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरतमातु मुसुकानि ॥५॥

प्रियबादिनि सिप दीन्हिउँ तोही। सपनेहु तो पर कोपु न मोही॥
सुदिन सुमंगल-दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिन कर-कुल रीति सुहाई॥
रामतिलकु जौं साँचेहु काली। देउ माँगु मन भावत आली॥
कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभाय पिआरी॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेखी। मैं करि प्रीति-परीछा देखी॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ रामसिय पूत पतोहू॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्हके तिलक छोभु कस तोरें॥

दो०-भरतसपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि कारनु मोहि सुनाउ ॥६॥

एकहिं बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फोरै जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा॥
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई॥
हमहु कहब अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिन राती॥
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ, लहिअ जो दीन्हा॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाँडि अब होब कि रानी॥
जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥
ता तें कछुक बात अनुसारी। छमिअ देबि, बडि चूक हमारी॥

दो०-गूढ़ कपट प्रिय-बचन सुनि, तीय अधरबुधि रानि।
सुरमाया बस बैरिनिहि, सुहृदय जानि पतिआनि ॥७॥

सादर पुनि पुनि पूछति ओही। सवरीगान मृगी जनु मोही।
तसि मति फिरी अहै जसि भावी। रहँसी चेरि घात जनु फावी।
तुम्ह पूछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेउ मोर घरफोरी नाऊँ।
सजिप्रतीतिबहु बिधिगढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली।
प्रिय सियरामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी।
रहा प्रथम, अब ते दिन बीते। समय फिरे रिपु होहिं पिरीते।
भानु कमल कुल पोषनि हारा। बिनु जर जारि करै सोइ छारा।
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाउ बर बारी।
दो०-तुम्हहिं न सोचु सोहाग बल, निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुहँ मीठ नृपु, राउर सरल सुभाउ॥८॥
चतुर गँभीर राम-महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी।
पठए भरतु भूप ननिअउरें। राम मातु-मत जानब रउरें।
सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरतमातु बल पी कें।
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई।
राजहि तुम्ह पर प्रेम बिसेषी। सवति-सुभाउ सकइ नहिं देखी।
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई।
यह कुल उचित राम कहँ टीका। सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका।
आगिलि बात समुझि डर मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही।
दो०-रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपटप्रबोधु।
कहिसि कथा सत सवति कै, जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु॥९॥
भावी बस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई।
का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना।

दो०–काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरतमातु मुसुकानि ॥५॥

प्रियबादिनि सिष दीन्हिउँ तोही। सपनेहु तो पर कोपु न मोही।
सुदिन सुमगल-दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई।
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। एहु दिन कर-कुल-रीति सुहाई।
रामतिलकु जौं साँचेहु काली। देउ माँगु मन भावत आली।
कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभाय पिआरी।
मो पर करहिं सनेहु बिसेखी। मैं करि प्रीति-परीछा देखी।
जौ बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहु रामसिय पूत पतोहू।
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्हके तिलक छोभु कस तोरें।

दो०–भरतसपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि कारनु मोहि सुनाउ ॥६॥

एकहिं बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी।
फोरै जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा।
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहिं करुइ मैं माई।
हमहु कहब अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिन राती।
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ,लहिअ जो दीन्हा
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाँडि अब होब कि रानी
जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा
ता तें कछुक बात अनुसारी। छमिअ देवि, बडि चूक हमारी

दो०–गूढ कपट-प्रिय-बचन सुनि, तीय अधरबुधि रानि।
सुरमाया बस बैरिनिहि, सुहृदय जानि पतिआनि ॥७॥

सादर पुनि पुनि पूछति ओही। सबरीगान मृगी जनु मोही।
तसि मति फिरी अहै जसि भावी। रहँसी चेरि घात जनु फाबी।
तुम्ह पूछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेउ मोर घरफोरी नाऊँ।
सजिप्रतीतिबहु बिधिगढि छोली। अवध साढसाती तब बोली।
प्रिय सियरामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी।
रहा प्रथम, अब ते दिन बीते। समय फिरे रिपु मोहिं पिरीते।
भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जर जारि करै सोइ छारा।
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाउ बर बारी।
दो०-तुम्हहिं न सोचु सोहाग बल, निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुहँ मीठ नृपु, राउर सरल सुभाउ॥८॥
चतुर गँभीर राम-महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी।
पठए भरतु भूप ननिअउरें। राम मातु मत जानब रउरें।
सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरतमातु बल पी कें।
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई।
राजहि तुम्ह पर प्रेम बिसेखी। सवति-सुभाउ सकइ नहिं देखी।
रचि प्रपचु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई।
यह कुल उचित राम कहँ टीका। सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका।
आगिलि बात समुझि डर मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही।
दो०-रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपटप्रबोधु।
कहिसि कथा सत सवति के, जेहि बिधि बाढ बिरोधु॥९॥
भावी बस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई।
का पूँछहु तुम्ह अजहुँ न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना

भयेउ पाप दिनु सजत समाजू। तुम पाई सुधि मोहि सन आजू
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारे। सत्य कहें नहिं दोषु हमारे।
जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ विधि देइहि हमहिं सजाई।
रामहि तिलकु कालि जौं भयेऊ।तुम्ह कहँ बिपति बीजु विधि बयेऊ
रेख खँचाइ कहौं बलु भाखी। भामिनि भइहु दूध के माखी।
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु, न आन उपाई।
दो०-कद्रू बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहिं कौसिला देव।
भरतु बंदि-गृह सेइहहिं, लखनु राम के नेब ॥१०॥
कैकयसुता सुनत कटु बानी। कहि न सकै कछु सहमि सुखानी
तन पसेउ, कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी।
कहि कहि कोटिक कपटकहानी। धीरज धरहु प्रबोधिसि रानी।
कीन्हिसि कठिन पढाइ कुपाठू।जिमि न नवइ फिरि उकठि कुकाठू
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहै मानि मराली।
सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकै मोरी।
दिन प्रति देखौं राति कुसपने। कहौं न तोहि मोहबस अपने।
काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानौं काऊ।
दो०-अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु क कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहि, दैव दुसह दुख दीन्ह ॥११॥
नैहर जनमु भरब बरु जाई। जियत न करबि सवति सेवकाई।
अरिबस दैउ जियावत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही।
दीन बचन कह बहु बिधि रानी। सुनि कुबरी तिय माया ठानी।
अस कस कहहु मान मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहँ दिन दूना

जेहि राउर अति अनभल ताका । सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका ।
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि । भूख न बासर नींद न जामिनि ।
पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची । भरत भुआल होहिं यहु साँची ।
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ । है तुम्हरी सेवा बस राऊ ।
दो०-परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि ।
कहसि मोर दुखु देखि बड़, कस न करब हित लागि ॥१२॥
कुबरीं करि कबुली* कैकेई । कपटछुरी उर पाहन टेई ।
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे । चरइ हरित तृन बलिपसु जैसे ।
सुनत बात मृदु अंत कठोरी । देति मनहुँ मधु माहुर घोरी ।
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं । स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं ।
दुइ बरदान भूप सन थाती । माँगहु आजु, जुड़ावहु छाती ।
सुतहि राजु रामहिं बनबासू । देहु, लेहु सब सवति हुलासू ।
भूपति रामसपथ जब करई । तब माँगेहु जेहि बचनु न टरई ।
होइ अकाजु आजु निसि बीतें । बचनु मोर प्रिय मानहु जी तें ।
दो०-बड़ कुघातु करि पातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु ।
काजु सँवारेहु सजग सबु, सहसा जनि पतिआहु ॥१३॥
कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी । बार बार बड़ि बुद्धि बखानी ।
तोहि सम हितु न मोर संसारा । बहे जात कइ भइसि अधारा ।
जौं बिधि पुरब मनोरथु काली । करौं तोहि चखपूतरि आली ।
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई । कोपभवन गवनी कैकेई ।

---

* कबुली = बलिपशु जो किसी देवता पर चढ़ाने के लिए पहले से कबूला या माना जाय ।

विपति बीजु, बरषारितु चेरी। भुइँ भै कुमति कैकई केरी।
पाइ कपटजलु अंकुर जामा। बर दोउ दल, दुखफल परिनामा।
कोप समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई।
राउर-नगर कोलाहलु होई। यह कुचालि कछु जान न कोई।

राम का कैकेयी से सम्भाषण

दो०—जाइ देखि रघुबंस मनि, नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि, मनहु बृद्ध गजराजु ॥ १ ॥
सूखहिं अधर जरै सबु अंगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू।
सरुष समीप दीखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरी गनि लेई।
करुनामय मृदु राम-सुभाऊ। प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ।
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी।
मोहि कहु मातु तात-दुख-कारन। करिअ जतन जेहि होइ निवारन।
सुनहु राम सब कारन एहू। राजहिं तुम्ह पर बहुत सनेहू।
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। माँगेउँ जो कछु मोहि सुहाना।
सो सुनि भयेउ भूपउर सोचू। छाँडि न सकहिं तुम्हार सँकोचू।
दो०—सुत-सनेहु इत बचनु उत, संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु ॥ २ ॥
निधरक बैठि कहे कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी।
जीभ कमान, बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना।
जनु कठोरपनु धरें सरीरू। सिखै धनुषविद्या बर बीरू।
सबु प्रसंग रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई।
मन मुसकाइ भानु कुल-भानू। रामु सहज आनंद-निधानू।
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बागविभूषन।
सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु-मातु-बचन-अनुरागी।
तनय मातु पितु-तोषनि हारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।

दो०—मुनिगन मिलनु विसेपि वन, सवहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितुआयसु वहुरि, संमत जननी तोर ॥ ३॥
भरतु प्रानप्रिय पावहि राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौ न जाउँ वन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़समाजा॥
सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु माँगी॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं॥
अब एकु दुखु मोहिं बिसेषी। निपट बिकल नरनायकु देखी॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहिं महतारी॥
राउ धीर गुन उदधि-अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू॥
जाते मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥
दो०—सहज सरल रघुवर बचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जिमि वक्रगति, जद्यपि सलिल समान ॥ ४॥
रहसी रानि रामरुख पाई। बोली कपटसनेह जनाई॥
सपथ तुम्हार, भरत कै आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना॥
तुम्ह अपराधु जोगु नहिं ताता। जननी-जनक-बंधु सुख-दाता॥
राम सत्य सब जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन-रत अहहू॥
पितहिं बुझाइ कहहु, वलि, सोई। चौथेपन जेहि अजसु न होई॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हे॥
लागहि कुमुख बचन सुभ कैसे। मगह गयादिक तीरथ जैसे॥
रामहिं मातुबचन सब भाए। जिमि सुरसरिगत सलिल सुहाए॥
दो०—गइ मुरुछा, रामहि सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह।
सचिव राम आगमन कहि, बिनय समयसम कीन्ह ॥ ५॥

अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे।
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरनु परत नृप रामु निहारे।
लिये सनेहबिकल उर लाई। गै मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई।
रामहिं चितै रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारिप्रवाहू।
सोकबिवस कछु कहै न पारा। हृदय लगावत बारहिं बारा।
बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं।
सुमिरि महेसहि कहै निहोरी। बिनती सुनहु सदा सिव मोरी।
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी।
दो०—तुम्ह प्रेरक सब के हृदय, सो मति रामहिं देहु।
बचनु मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सीलु सनेहु॥ ६॥
अजसु होउ, जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुर जाऊँ।
सब दुख दुसह सहावउ मोहीं। लोचन ओट रामु जनि होहीं।
अस मन गुनै, राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला।
रघुपति पितहि प्रेम बस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी
देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी।
तात कहौं कछु करौं ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई।
अति लघु बात लागि दुख पावा। काहु न मोहिं कहि प्रथम जनावा
देखि गोसाँइहि पूछेउँ माता। सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता।
दो०—मंगलसमय सनेहबस, सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ, कहि पुलके प्रभुगात॥ ७॥
धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू।
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रानसम जाकें।

आयसु पालि जनमफलु पाई। ऐहों बेगिहि होउ रजाई।
बिदा मातु सन आवों माँगी। चलिहों बनहिं बहुरि पग लागी।
अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोकबस उतरु न दीन्हा।
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी।
सुनि भए बिकल सकल नरनारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी।
जो जहँ सुनइ धुनइ सिर सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई।
दो०—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं, सोकु न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन-रस-कटकई, उतरी अवध बजाइ ॥८॥
मिलेहिं माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी।
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ।
निज कर नयन काढ़ि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहति चीखा।
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघु-बंस-बेनु बन आगी।
पालव बैठि पेड़ु एहि काटा। सुख महँ सोक ठाठ धरि ठाटा।
सदा रामु एहि प्रान समाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना।
सत्य कहहिं कबि नारिसुभाऊ। सब बिधि अगम अगाध दुराऊ।
निज प्रतिबिंबु बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारिगति भाई।
दो०—काह न पावकु जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ ॥९॥
का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा।
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा।
जो हठि भयेउ सकल दुख भाजनु। अबला बिबस ग्यानु गुनु गा जनु।
एक धरमपरमिति पहिचाने। नृपहि दोसु नहिं देहिं सयाने।

सिवि-दधीचि हरिचंद-कहानी । एक एक सन कहहिं बखानी ।
एक भरत कर संमत कहहीं । एक उदास भाय सुनि रहहीं ।
कान मूँदि कर, रद गहि जीहा । एक कहहिं यह बात अलीहा ।
सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे । राम भरत कहँ प्रान पियारे ।
दो०-चंदु चवइ बरु अनलकन, सुधा होइ बिष तूल ।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु, भरतु रामप्रतिकूल ॥१०॥
एक बिधातहि दूषनु देहीं । सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं ।
खरभरु नगर, सोचु सब काहू । दुसह दाहु, उर मिटा उछाहू ।
बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी । जे प्रिय परम कैकई केरी ।
लगीं देन सिख सीलु सराही । बचनबान सम लागहिं ताही ।
भरतु न मोहि प्रिय रामसमाना । सदा कहहु यहु सबु जगु जाना ।
करहु राम पर सहज सनेहू । केहि अपराध आजु बनु देहू ।
कबहुँ न कियेहु सवति आरेसू । प्रीति प्रतीति जान सबु देसू ।
कौसल्या अब काह बिगारा । तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा ।
दो०-सीय कि पिय सँगु परिहरिहि, लषनु कि रहिहहिं धाम ।
राजु कि भूँजब भरत पुर, नृपु कि जिइहि बिनु राम ॥११॥
अस बिचारि उर छाँडहु कोहू । सोक कलंक कोठि जनि होहू ।
भरतहि अवसि देहु जुबराजू । कानन काह राम कर काजू ।
नाहिंन रामु राज के भूखे । धरमधुरीन बिषयरस रूखे ।
गुरगृह बसहु रामु तजि गेहू । नृप सन अस बरु दूसर लेहू ।
जौं नहिं लगिहहु कहें हमारे । नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे ।
जौं परिहास कीन्हि कछु होई । तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ।

रामसरिस सुत कानन जोगू। काह कहहिं सुनि तुम्ह कहँ लोगू॥
उठहु वेगि सोइ करहु उपाई। जेहि विधि सोकु कलंकु नसाई॥
छंद-जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहिं जात वन जनि बात दूसरि चालही॥
जिमि भानु बिनु दिनु,प्रान बिनु तनु,चंदु बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदासप्रभु बिनु समुझि धौं जिय भामिनी॥
सो०-सखिन्ह सिखावनु दीन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी॥१२॥
उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी॥
राजु करत येह दैव विगोई। कीन्हेसि अस जस कर न कोई॥
एहि बिधि बिलपहिं पुर-नर-नारी। देहिं कुचालिहि कोटिक गारी॥
जरहिं विषम जर, लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा॥
बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जल-चर-गन सूखत पानी॥
अति बिषाद बस लोग लोगाई। गए मातु पहिं रामु गोसाईं॥
मुखु प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखइ राऊ॥
दो०-नवगयंदु रघुबीरमनु, राजु अलान समान।
छूट जानि बनगवनु सुनि, उर अनदु अधिकान॥१३॥

माता कौशल्या से राम का विदा माँगना और सीता को समझाना

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायेउ माथा।
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषनबसन निछावरि कीन्हे।
बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेहजलु पुलकित गाता।
गोद राखि पुनि हृदय लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए।
प्रेमप्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनदपदबी जनु पाई।
सादर सुंदर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी।
कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद-मंगल कारी।
सुकृत सील सुख सींव सुहाई। जनमलाभ कै अवधि अघाई।
दो०-जेहि चाहत नरनारि सब, अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातकचातकि तृषित, वृष्टि सरद रितु स्वाति ॥१॥
तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू।
पितुसमीप तब जायेहु भैया। भै बड़ि बार जाइ बलि मैया।
मातुबचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह-सुर-तरु के फूला।
सुखमकरंद भरे स्रियमूला। निरखि राम मनु-भवँरु न भूला।
धरमधुरीन धरमगति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु-बानी।
पिता दीन्ह मोहि काननराजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू।
आयसु देहि मुदितमन माता। जेहिं मुदमंगल कानन जाता।
जनि सनेहबस डरपसि भोरें। आनँदु अंब अनुग्रह तोरें।

दो०-वरप चारि दस बिपिन बसि, करि पितु-बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउँ, मन जनि करसि मलान ॥२॥
बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सरसम लगे मातु-उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस पानी॥
कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरिनादू॥
नयन सजल तन थरथर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु माँपी॥
धरि धीरजु सुतबदनु निहारी। गदगद-बचन कहति महतारी॥
तात पितहि तुम्ह प्रानपियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥
राजु देन कहँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिन-कर-कुल भयेउ कृसानू॥
दो०-निरखि रामरुख सचिवसुत, कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहिं जाइ ॥३॥
राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधिगति बाम सदा सब काहू॥
धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी॥
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरम जाइ अरु बंधुबिरोधू॥
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट-सोच-बिबस भै रानी॥
बहुरि समुझि तियधरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी॥
सरल सुभाउ राममहतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितुआयसु सब धरम क टीका॥
दो०-राजु देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥४॥

जा केवल पितु-आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बडि माता ।
जौं पितुमातु कहेउ वन जाना । तौ कानन सत-अवध-समाना ।
पितु वनदेव मातु वनदेवी । खग मृग चरनसरोरुह-सेवी ।
अतहु उचित नृपहि वनवासू । वय विलोकि हिय होइ हरासू ।
वडभागी वनु, अवध अभागी । जो रघु वंस तिलक तुम्ह त्यागी ।
जौ सुत कहौ संग मोहि लेहू । तुम्हरे हृदय होइ संदेहू ।
पूत परमप्रिय तुम्ह सबही के । प्रान प्रान के, जीवन जी के ।
ते तुम्ह कहहु मातु वन जाऊँ । मैं सुनि वचन बैठि पछिताऊँ ।
दो०–यह विचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेह बढाइ ।
मानि मातु कर नात बलि, सुरति विसरि जनि जाइ ॥५॥
देव पितर सब तुम्हहिं गोसाईं । राखहु पलक नयन की नाईं ।
अवधि अंबु प्रियपरिजन मीना । तुम्ह करुनाकर धरमधुरीना ।
अस विचारि सोइ करहु उपाई । सबहिं जिअत जेहि भेंटहु आई ।
जाहु सुखेन वनहिं बलि जाऊँ । करि अनाथ जन परिजन-गाऊँ ।
सब कर आजु सुकृतफल बीता । भयेउ करालु कालु विपरीता ।
बहु विधि विलपि चरन लपटानी । परमअभागिनि आपुहि जानी ।
दारुन दुसह दाहु उर व्यापा । बरनि न जाइ विलापकलापा ।
राम उठाइ मातु उर लाई । कहि मृदुवचन बहुरि समुझाई ।
दो०–समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ ।
जाइ सासु पद-कमल जुग, वंदि बैठि सिरु नाइ ॥६॥
दीन्हि असीस सासु मृदुबानी । अतिसुकुमारि देखि अकुलानी ।
बैठि नमित मुख सोचति सीता । रूपरासि पति प्रेम पुनीता ।

दो०–बरष चारि दस बिपिन बसि, करि पितु-बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउँ, मन जनि करसि मलान ॥२॥
बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सरसम लगे मातु-उर करके।
सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस पानी।
कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरिनादू।
नयन सजल तन थरथर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु माँपी।
धरि धीरजु सुतबदनु निहारी। गदगद-बचन कहति महतारी।
तात पितहि तुम्ह प्रानपियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे।
राजु देन कहँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा।
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिन-कर-कुल भयेउ कृसानू।
दो०–निरखि रामरुख सचिवसुत, कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसगु रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहिं जाइ ॥३॥
राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू।
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधिगति बाम सदा सब काहू।
धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछुदरि केरी।
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरम जाइ अरु बंधुबिरोधू।
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। सकट-सोच-बिबस भै रानी।
बहुरि समुझि तियधरमु सयानी। रामुभरतु दोउ सुत सम जानी।
सरल सुभाउ राममहतारी। बोली बचन धीर धरि भारी।
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितुआयसु सब धरम क टीका।
दो०–राजु देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥४॥

जौ केवल पितु-आयसु ताता । तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ।
जौं पितुमातु कहेउ बन जाना । तौ कानन सत-अवध-समाना ।
पितु बनदेव मातु बनदेवी । खग मृग चरनसरोरुह-सेवी ।
अतहु उचित नृपहि बनवासू । बय बिलोकि हिय होइ हरासू ।
बड़भागी बनु, अवध अभागी । जो रघु बंस तिलक तुम्ह त्यागी ।
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू । तुम्हरे हृदय होइ संदेहू ।
पूत परमप्रिय तुम्ह सबही के । प्रान प्रान के, जीवन जी के ।
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ । मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ ।
दो०-यह बिचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेहु बढ़ाइ ।
मानि मातु कर नात बलि, सुरति बिसरि जनि जाइ ॥५॥
देव पितर सब तुम्हहिं गोसाईं । राखहु पलक नयन की नाईं ।
अवधि अंबु प्रियपरिजन मीना । तुम्ह करुनाकर धरमधुरीना ।
अस बिचारि सोइ करहु उपाई । सबहिं जिअत जेहि भेंटहु आई ।
जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ । करि अनाथ जन-परिजन-गाऊँ ।
सब कर आजु सुकृतफल बीता । भयेउ करालु कालु बिपरीता ।
बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी । परमअभागिनि आपुहि जानी ।
दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा । बरनि न जाइ बिलापकलापा ।
राम उठाइ मातु उर लाई । कहि मृदुबचन बहुरि समुझाई ।
दो०-समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ ।
जाइ सासु पद कमल-जुग, बंदि बैठि सिर नाइ ॥६॥
दीन्हि असीस सासु मृदुबानी । अतिसुकुमारि देखि अकुलानी ।
बठि नमित मुख सोचति सीता । रूपराशि पति प्रेम पुनीता ।

चलन चहत वन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतब कछु जाइ न जाना॥
चारु चरननख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी॥
मनहुँ प्रेमबस बिनती करहीं। हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं॥
मञ्जुविलोचन मोचति वारी। बोली देखि राम-महतारी॥
तात सुनहु सिय अतिसुकुमारी। सासु-ससुर-परिजनहिं पियारी॥
दो०-पिता जनक भूपालमनि, ससुर भानु-कुल भानु।
पति रवि-कुल कैरव-विपिन विधु, गुन-रूप निधानु ॥७॥
मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई। रूपरासि गुन सालु सुहाई॥
नयनपुतरि करि प्रीति बढाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥
कलपबेलिजिमिबहुबिधि लाली। सींचि सनेहसलिल प्रतिपाली॥
फूलत फलत भयेउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥
पलगपीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीपबाति नहिं टारन कहऊँ॥
सोइसियचलनचहतिवन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
चंद-किरन रस रसिक चकोरी। रविरुख नयन सकै किमि जोरी॥
दो०-करि, केहरि, निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु वन भूरि।
विषवाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनि मूरि ॥८॥
बनहित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय सुख भोरी॥
पाहन कृमिजिमिकठिनसुभाऊ। तिन्हहिं कलेसु न कानन काऊ॥
के तापसतिय काननजोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥
सिय बन बसिहि तातकेहि भाँती। चित्रलिखित कपिदेखिडेराती॥

सुर सर सुभग बनज-बन चारी। डाबर-जोग कि हंसकुमारी।
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई।
जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा।
सुनि रघुबीर मातु-प्रिय-बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी।
दो०-कहि प्रियबचन बिबेकमय, कीन्ह मातु-परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन-गुन दोष॥ ६॥
मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मनमाहीं।
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू।
आपन मोर नीक जो चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू।
आयसु मोरि सासु-सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई।
तें अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु-ससुर पद पूजा।
जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेमबिकल मति भोरी।

चलन चहत वन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू।
की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतब कछु जाइ न जाना।
चारु चरननख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी।
मनहुँ प्रेमबस बिनती करहीं। हमहिं सीयपद जनि परिहरहीं।
मञ्जुबिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम-महतारी।
तात सुनहु सिय अतिसुकुमारी। सासु ससुर-परिजनहिं पियारी।
दो०-पिता जनक भूपालमनि, ससुर भानु कुल भानु।
पति रवि-कुल कैरव-बिपिन बिधु, गुन-रूप निधानु ॥७॥
मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई। रूपरासि गुन सालु सुहाई।
नयनपुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई।
कलपबेलिजिमिबहुबिधिलाली। सींचि सनेहसलिल प्रतिपाली।
फूलत फलत भयेउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा।
पलगपीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा।
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीपबाति नहिं टारन कहऊँ।
सोइसियचलनचहतिवन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा।
चंद किरन रस रसिक चकोरी। रबिरुख नयन सकै किमि जोरी
दो०-करि, केहरि, निसिचर चरहिं, दुष्ट जंतु बन भूरि।
विषबाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवनि मूरि ॥८॥
बनहित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय सुख भोरी
पाहन कृमिजिमिकठिनसुभाऊ। तिन्हहिं कलेसु न कानन
कै तापसतिय काननजोगू। जिन्ह तप हेतु तजा
सिय बन बसिहि तातकेहि भाँती। चित्रलिखित कपि

सुरसर सुभगबनज-बन चारी। डावर-जोग कि हंसकुमारी।
अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहि सोई।
जौं सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा।
सुनि रघुबीर मातु-प्रिय-बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी।
दो०-कहि प्रियबचन बिबेकमय, कीन्ह मातु-परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन-गुन दोष ॥ ९ ॥
मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समउ समुझि मनमाहीं।
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू।
आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू।
आयसु मोरि सासु-सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई।
एहि तें अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा।
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेमबिकल मति भोरी।
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझायेहु मृदु बानी।
कहौं सुभाय सपथ सत मोही। सुमुखि मातुहित राखौं तोही।
दो०—गुर-स्रुति-समत धरमफलु, पाइअ बिनहिं कलेस।
हठबस सब संकट सहे, गालव, नहुष नरेस ॥१०॥
मैं पुनि करि प्रमान पितुबानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी।
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा।
जौं हठ करहु प्रेमबस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा।
काननु कठिन भयंकर भारी। घोर घामु, हिम, बारि, बयारी।
कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना।
चरनकमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे।

कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे।
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा।

दो०—भूमिसयन बलकलबसन, असनु कंद-फल-मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबइ समय अनुकूल ॥६१॥

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपटबेष बिधि कोटिक करहीं।
लागै अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी।
ब्याल कराल बिहँग बन घोरा। निसिचर-निकर नारि-नर-चोरा।
डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ।
हंसगवनि तुम्ह नहिं बनजोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहिं लोगू।
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवनपयोधि मराली।
नव-रसाल-बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला।
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन भारी।

दो०—सहज सुहृद-गुर-स्वामि सिख, जो न करै सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हितहानि ॥६२॥

सुनि मृदुबचन मनोहर पिअके। लोचन ललित भरे जल सियके।
सीतल सिख दाहक भै कैसें। चकइहि सरदचंद निसि जैसें।
उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही।
बरबस रोकि बिलोचनबारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी।
लागि सासुपग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई।
मैं पुनि समुझि दीख मनमाहीं। पि[illegible]

दो०—प्राननाथ करुनायतन, सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघु-कुल-कुमुद बिधु, सुरपुर नरकसमान ॥१३॥
मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद समुदाई।
सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुंदर सुसील सुखदाई।
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते।
तनु धनु धामु धरनि पुरराजू। पतिबिहीन सबु सोकसमाजू।
भोग रोगसम, भूषन भारू। जम-जातना-सरिस संसारू।
प्राननाथ तुम्ह बिनु जगमाहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद-बिमल बिधु-बदनु निहारे
दो०—खग मृग परिजन नगर बनु, बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुर-सदन सम, परनसाल सुखमूल ॥१४॥
बनदेवीं बनदेव उदारा। करिहहिं सासु-ससुर-समसारा
कुस किसलय-साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई।
कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध-सत-सरिस पहारू।
छिन छिनप्रभु पदकमलबिलोकी। रहिहौंमुदितदिवसजिमिकोकी।
बनदुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे।
प्रभु-बियोग-लव-लेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना।
असजियजानिसुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाँडिअ जनि।
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर-अंतर-जामी।
दो०—राखिअ अवध जो अवध लगि, रहत जानिअहि प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद, सील-सनेह-निधान ॥१५॥

कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे।
भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा।

दो०—भूमिसयन बलकलवसन, असनु कंद-फल मूल।
ने कि सदा सब दिन मिलहिं, सबइ समय अनुकूल ॥६१॥

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपटवेष विधि कोटिक करहीं।
लागै अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी।
ब्याल कराल बिहँग बन घोरा। निसिचर-निकर नारि-नर चोरा।
डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ।
हंसगवनि तुम्ह नहिं बनजोगू। सुनि अपजसु मोहिं देइहिं लोगू।
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवनपयोधि मराली।
नव-रसाल-बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला।
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन भारी।

दो०—सहज सुहृद-गुर-स्वामि-सिख, जो न करै सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हितहानि ॥६२॥

सुनि मृदुवचन मनोहर पिअके। लोचन ललित भरे जल सियके।
सीतल सिख दाहक भै कैसें। चकइहि सरदचंद निसि जैसें।
उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही।
बरबस रोकि बिलोचनबारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी।
लागि सासुपग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी।
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परमहित होई।
मैं पुनि समुझि दीख मनमाहीं। पिय बियोग-सम दुखु जग नाहीं।

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिय माय मैं परम अभागी।
सेवा समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सुफल न कीन्हा।
तजब छोभु जनि छाँडिअ छोहू। करम कठिन कछु दोसु न मोहू।
सुनि सियबचन सासुअकुलानी। दसा कवनि बिधिकहा बखानी।
बारहि बार लाइ उर लीन्ही। धरिधीरज सिख आसिष दीन्ही।
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गग-जमुन-जल धारा।
दो०—सीतहि सासु असीस सिख, दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पदपदुम सिरु, अति हित बारहिं बार ॥१८॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरनसरोज निहारी।
सबहि भाँति पिय-सेवा करिहौं। मारगजनित सकल स्रमहरिहौं।
पाय पखारि बैठि तरुछाहीं। करिहौं बाउ मुदित मन माहीं।
स्रम-कन-सहितस्याम तनु देखे। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे।
सम महि तृन तरु-पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसिदासी।
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोही।
कोप्रभुसँग मोहि चितवनिहारा। सिंहवधुहिजिमिससक सिआरा
मैं सुकुमारि, नाथ बनजोगू। तुम्हहिंउचिततप,मोकहँ भोगू।
दो०—ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जौं न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु विषम-वियोग-दुखु, सहिहहिं पाँवर प्रान ॥६६॥
अस कहि सीय बिकल भै भारी। बचनबियोग न सकी सँभारी।
देखि दशा रघुपति-जिय जाना। हठि राखे नहिं राखिहि प्राना।
कहेउ कृपाल भानु-कुल-नाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा।
नहिं विषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन-गवन समाजू।
कहि प्रियबचन प्रिया समुझाई। लगे मातुपद आसिष पाई।
बेगि प्रजादुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई।
फिरिहिदसाविधिबहुरिकिमोरी। देखिहौं नयन मनोहर जोरी।
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदनविधुजोइहि।
दो०—बहुरि बच्छ कहि लालु कहि, रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हिय, हरषि निरखिहौं गात ॥६७॥
लखि सनेह कातरि महतारी। बचनु न आव बिकल भै भारी।
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेह न जाइ बखाना।

ीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं।
रवर धीर धरम-धुर-धारी। निगम नीति कहँ ते अधिकारी।
ं सिसु प्रभु-सनेह-प्रतिपाला। मदर मेरु कि लेहिं मराला।
ुरु पितु मातु न जाना काहू। कहा सुभाउ नाथ पतिआहू।
हँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीतिप्रतीति निगम निजु गाई।
ोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर-अन्तरजामी।
रम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।
न-क्रम-बचन-चरनरत होई। कृपासिंधु परिहरिअकि सोई?
ो०—करुनासिंधु सुबंधु के, सुनि मृदु बचन विनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत॥ ३॥
ाँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई।
ुदित भये सुनि रघुबर बानी। भयेउ लाभ बड़, गइ बडि हानी।
रषित हृदय मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिर लोचन पाए।
ाइ जननि-पग नायेउ माथा। मनु रघुनंदन-जानकि-साथा।
ूछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेखी।
ई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा।
खन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू।
ाँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग, विधि, कहहिकि नाहीं।
ो०—समुझि सुमित्रा राम-सिय-रूपु-सुसीलु-सुभाउ।
नृपसनेह लखि धुनेउ सिरु, पापिनि दीन्ह कुदाउ॥ ४॥
ीरज धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदुबानी।
ात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही।

माता सुमित्रा से लक्ष्मण का विदा माँगना

समाचार जब लछिमन पाए। व्याकुल बिलखबदन उठि धाए।
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अतिप्रेम अधीरा।
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीनु जनु जल तें काढ़े।
सोचु हृदय बिधि का होनिहारा। सब सुखु सुकृतु सिरान हमारा।
मो कहँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिंभवनकि लेहहिं साथा।
राम बिलोकि बंधु कर जोरें। देह गेह सब सन तृन तोरें।
बोले बचनु राम नयनागर। सील-सनेह-सरल सुख सागर।
तात प्रेमबस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू।
दो०–मातु-पिता-गुरु-स्वामि सिख, सिरधरिकरहिंसुभाय।
लहेउ लाभ तिन्ह जनम कर, न तरु जनमु जग जाय॥ १॥
असजिय जानिसुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु-पद-सेवकाई।
भवन भरत रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध, मम दुख मन माहीं।
मैं बन जाउँ तुम्हहिं लेइ साथा। होइसबहिंबिधिअवध अनाथा।
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहँ परै दुसह-दुख भारू।
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड दोषू।
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सोनृपु अवसि नरकअधिकारी।
रहहु तात अस नीति बिचारी। सुनत लषनु भए व्याकुलभारी।
सिअरे बचन सूखि गए कैसे। परसत तुहिन तामरस जैसे।
दो०—उतरु न आवत प्रेमबस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह, तजहु त कहा बसाइ॥ २॥

केवट की भक्ति

दो०-रथ हाँकेउ, हय रामतन, हेरि हेरि हिहिनाहिं।
देखि निषाद विषादबस, धुनहिं सीस पछिताहिं ॥ १ ॥

जासु वियोग बिकल पसु ऐसे। प्रजा मातु पितु जीहहिं कैसे।
बरबस राम सुमंत्रु पठाए। सुरसरितीर आप तब आए।
माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।
चरन कमल-रज कहँ सबु कहई। मानुषकरनि मूरि कछु अहई।
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई।
तरनिउँ मुनिघरनी होइ जाई। बाट परै मोरि नाव उड़ाई।
एहि प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानौं कछु और कबारू।
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पदपदुम पखारन कहहू।

छंद—पदकमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आनि दसरथ सपथ सब साँची कहौं॥
बरु तीर मारहु लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहौं॥

सो०-सुनि केवट के बयन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना-अयन, चितै जानकी लखन-तन ॥ २ ॥

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहि तव नाव न जाई।
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु, उतारहि पारू।
जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा।

अवध तहाँ जहँ राम-निवासू । तहइँ दिवसु जहँ भानुप्रकासू ।
जौं पै सीय-रामु वन जाहीं । अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ।
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं । सेइअहि सकल प्रान की नाईं ।
राम प्रान प्रिय जीवन जी के । स्वारथरहित सखा सबही के ।
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें । सब मानिअहि राम के नातें ।
अस जिय जानि संग वन जाहू । लेहु तात जग जीवन लाहू ।
दो०—भूरि भागभाजन भयहु, मोहि समेत बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरे मन छाँड़ि छलु, कीन्ह रामपद ठाउँ ॥ ५।
पुत्रवती जुवती जग सोई । रघु-पति-भगतु जासु सुतहोई ।
नतरु बाँझ भलि, बादि बिआनी । रामविमुख सुत तें हित-हानी ।
तुम्हरेहि भाग राम वन जाहीं । दूसर हेतु तात कछु नाहीं ।
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू । राम-सीय-पद सहज सनेहू ।
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू । जनि सपनेहु इन्हके बस होहू ।
सकल प्रकार विकार विहाई । मन क्रम वचन करेहु सेवकाई ।
तुम्ह कहुँ वन सब भाँति सुपासू । सँग पितु मातु राम-सिय जासू ।
जेहि न रामु वन लहहिं कलेसू । सुत सोइ करेहु इहै उपदेसू ।
छंद—उपदेसु एहु जेहि जात तुम्हरे रामसिय सुख पावहीं ।
पितु-मातु-प्रिय-परिवार,पुर-सुख,सुरति वन बिसरावहीं ।
तुलसी सुतहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष द
रति होउ अविरल अमल सिय-रघु-बीर-पद नित नित न
सो०—मातुचरन सिर नाइ, चले तुरत सकित हृदय ।
बागुर विषम तोराइ, मनहुँ भाग मृगु भागवस ॥

भरत की व्याकुलता

दो०-पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गँवहिं जोहारहिं जाहिं।
भरत कुसल पूछि न सकहिं, भय विषाद मन माहिं ॥१॥

हाट बाट नहिं जाहिं निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी।
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रवि-कुल जलरुह चंदिनि
सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारहिं भेंटि भवन लेइ आई।
भरत दुखित परिवार निहारा। मानहुँ तुहिन वनजवनु मारा।
कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती।
सुतहि ससोच देखि मनु मारें। पूछति नैहर कुसल हमारें।
सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूछी निज कुल-कुसल भलाई।
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय रामु लषन प्रिय भ्राता।

दो०-सुनि सुत वचन सनेहमय, कपटनीर भरि नयन।
भरत श्रवन मन सूल सम, पापिनि बोली बयन ॥२॥

तात बात मैं सकल सँवारी। भइ मंथरा सहाय बिचारी।
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुर पति पुर पगु धारेउ।
सुनत भरत भयविबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरिनादा।
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल व्याकुल भारी।
चलत न देखन पायेउँ तोही। तात न रामहिं सौंपेहु मोही।
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु-मरन हेतु महतारी।
सुनि सुतबचन कहति कैकेई। मरमु पाँछि जनु माहुर देई।
आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदितमन बरनी।

सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहुँ पगहुँ तें थोरा।
पदनख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभुबचन मोह मति करषी।
केवट रामरजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा।
अति आनद उमगि अनुरागा। चरनसरोज पखारन लागा।
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं।
दो०-पद पखारि जलु पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहिं पुनि, मुदित गयेउ लेइ पार॥ ३॥
उतरि ठाढ़ भए सुरसरिरेता। सीय रामु गुह लखन समेता।
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्ह
पियहिय की सिय जाननिहारी। मनिमुँदरी मन-मुदित उतारी
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष-दुख-दारिद दावा
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्हि बिधि बनिभलिभूर
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें
फिरती बार मोहि जोइ देवा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा
दो०-बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय, नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुणायतन, भगति बिमल बरु देइ॥ ४

सुनि सत्रुघन मातुकुटिलाई। जरहिं गात रिस, कछु न बसाई।
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई।
लखि रिस भरेउ लषन लघु-भाई। बरत अनल घृतआहुति पाई।
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भरि महि करत पुकारा।
कूबर टूटेउ, फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिरप्रचारू।
आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा।
सुनिरिपुहन लखिनख सिखखोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।
भरत दयानिधि दीन्ह छुडाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई।
दो० मलिन बसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुखभारु।
कनक-कलप-बर-बेलि-बन, मानहुँ हनी तुषारु ॥६॥
भरतहिं देखि मातु उठि धाई। मुरछित अवनि परी झँइ आई।
देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तनदसा बिसारी।
मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लषनु दोउ भाई।
कैकइ कत जनमी जग माँझा। जौं जनमि त भइ काहे न बाँझा।
कुलकलंकु जेहिं जनमेउ मोही। अपजसभाजन प्रिय जन द्रोही।
कोत्रिभुवनमोहिसरिसअभागी। गतिअसि तोरि मातु जेहिलागी।
पितु सुरपुर, बन रघु-बर केतू। मैं केवल सब अनरथहेतू।
धिग मोहि भयेउँ बेनु बन आगी। दुसह-दाह-दुख दूषन भागी।
दो०-मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिये उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि ॥७॥
सरल सुभाय माय हिय लाए। अतिहित मनहुँ राम फिरि आए।
भेंटेउ बहुरि लषन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदय समाई।

दो०-भरतहि बिसरेउ पितुमरन, सुनत राम-बन-गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जिअ, थकित रहे धरि मौनु ॥ ३ ॥
बिकलबिलोकिसुतहिसमुझावति। मनहुँ जरे पर लोनुलगावति।
तात राउ नहिं सोचइ जोगू। बिढ़इ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू।
जीवत सकल जनम-फल पाए। अंत अमर पति सदन सिधाए।
अस अनुमानि सोचु परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू।
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाके छतु जनु लाग अँगारू।
धीरजु धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा।
जौ पै कुरुचि रही अस तोही। जनमत काहे न मारेसि मोही।
पेड काटि तैं पालउ सींचा। मीनजिअन निति बारि उलीचा।
दो०-हसबसु दशरथु जनकु, राम लषन से भाइ।
जननी तू जननी भई, बिधि सन कछु न बसाइ ॥ ४ ॥
जब तें कुमति कुमत जिअ ठयेऊ। खंड खंड होइ हृदय न गयेऊ।
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह, मुँह परेउ न कीरा।
भूप प्रतीति तोर किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही।
बिधिहु न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट-अघ-अवगुण खानी।
सरल सुसील धरमरत राऊ। सो किमि जानै तीयसुभाऊ।
अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं।
भे अति अहित राम तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही।
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई।
दो०-राम बिरोधी हृदय तें, प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी, बादि कहौं कछु तोहि ॥ ५ ॥

जे अघ मातु पिता-सुत मारें। गाइगोठ महि सुर-पुर जारें।
जे अघ तिय-बालक वध कीन्हे। मीत महीपति माहुर दीन्हे।
जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कवि कहहीं
ते पातक मोहि होहु विधाता। जों एहु होइ मोर मत माता।
दो०-जे परिहरि हरि-हर चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तेहि के गति मोहि देउ विधि, जों जननी मत मोर॥१०॥
वेचहिं वेदु धरम दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं।
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। वेदविदूषक विस्वविरोधी।
लोभी लपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधनु परदारा।
पावों मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी एहु संमत मोरा।
जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथपथ विमुख अभागे।
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिन्हहिं न हरि हर-सुजस सुहाई
तजि श्रुतिपथ बामपथ चलहीं। बंचक विरचि वेषु जगु छलहीं।
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जों एहु जानों भेऊ।
दो०—मातु भरत के बचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति रामप्रिय तात तुम्ह, सदा बचन मन काय॥११॥
राम प्रान तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रान तें प्यारे।
विधु विष चवे स्रवै हिमु आगी। होइ वारिचर वारिविरागी।
भए ज्ञान बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहिं प्रतिकूल न होहू।
मत तुम्हार एहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं।
अस कहि मातु भरतु हिय लाए। थन पय स्रवहिं नयनजल छाए।
करत विलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहि बीति गई सब राती।

देखि सुभाउ कहत सब कोई। राममातु अस काहे न होई॥
माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदुबचन उचारे॥
अजहुँ बच्छु, बलि, धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम-गति अघटित जानी॥
काहुहि दोस देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥
जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा। अजहुँ को जानै का तेहि भावा॥
दो०-पितुआयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरष न हृदय कछु, पहिरे बलकल चीर ॥८॥
मुखप्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी। रहै न राम-चरन-अनुरागी॥
सुनतहि लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥
रामु लखनु सिय बनहिं सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए॥
यहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु जीव अभागे॥
मोहि न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत मैं महतारी॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत-कुलिस समाना॥
दो०-कौसल्या के बचन सुनि, भरतसहित रनिवासु।
ब्याकुल बिलपत राजगृह, मानहुँ सोकनिवासु ॥९॥
बिलपहि बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्याँ लिए हृदयँ लगाई॥
भाँति अनेक भरतु समुझाए। कहि बिबेकमय बचन सुनाए॥
भरतहुँ मातु सकल समुझाईं। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाईं॥
छलबिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥

जे अघ मातु पिता-सुत मारें। गाइगोठ महि-सुर-पुर जारें।
जे अघ तिय-बालक बध कीन्हे। मीत महीपति माहुर दीन्हे।
जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं।
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौं एहु होइ मोर मत माता।
दो०—जे परिहरि हरि हर चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कै गति मोहि देउ बिधि, जौं जननी मत मोर॥१०॥
बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं।
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेदबिदूषक बिस्वबिरोधी।
लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधनु परदारा।
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी एहु संमत मोरा।
जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथपथ बिमुख अभागे।
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई। जिन्हहि न हरि हर-सुजसु सुहाई।
तजि श्रुतिपथ बामपथ चलहीं। बंचक बिरचि बेषु जगु छलहीं।
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं एहु जानौं भेऊ।
दो०—मातु भरत के बचन सुनि, साँचे सरल सुभाय।
कहति रामप्रिय तात तुम्ह, सदा बचन मन काय॥११॥
राम प्रान तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रान तें प्यारे।
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी।
भएँ ग्यान बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू।
मत तुम्हार एहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं।
अस कहि मातु भरतु हियँ लाए। थन पय स्रवहिं नयनजल छाए।
करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहि बीति गई सब राती।

वामदेउ वसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए।
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे।
दो०-तात हृदय धीरजु धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुरबचन सुनि, करन कहेउ सब साजु ॥ १२ ॥
नृपतनु बेद बिहित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमान बनावा।
गहि पग भरत मातु सब राखीं। रहीं राम दरसन अभिलाषीं।
चंदन अगर-भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए।
सरजुतीर रुचि चिता बनाई। जनु सुर-पुर-सोपान सुहाई।
एहि बिधि दाहक्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्ही।
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना।
जहँ जस मुनिवर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा।
भए बिसुद्ध दिये सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना।
दो०-सिंघासन भूषन बसन, अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरत लहि भूमिसुर, भे परिपूरन काम ॥ १३ ॥
पितुहित भरत कीन्ह जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी।
सुदिनु सोधि मुनिबर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाये।
बैठे राजसभा सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई।
भरतु वसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरम-मय बचन उचारे।
प्रथम कथा सब मुनिवर बरनी। कइकइ कुटिल कीन्ह जसि करनी।
भूप धरमब्रतु सत्य सराहा। जेहि तनु परिहरि प्रेम निबाहा।
कहत राम गुन सीलु सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ।
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनिग्यानी।

दो०-सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनि नाथ।
हानि लाभु जीवन मरनु, जसु अपजसु बिधि हाथ ॥ १४ ॥
अस बिचारि केहि देइअ दोषू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोषू।
तात बिचारु करहु मन माहीं। सोचु जोगु दसरथु नृपु नाहीं।
सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना।
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।
सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू।
सोचिअ सूद्र बिप्र-अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यानगुमानी।
सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी।
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुर आयसु अनुसरई।
दो० सोचिअ गृही जो मोहबस, करै करमपथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंचरत, बिगत बिबेक बिराग ॥ १५ ॥
बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावै भोगू।
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि-जनक-गुरु-बंधु बिरोधी।
सब बिधि सोचिअ पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी।
सोचनीय सबही बिधि सोई। जो न छाँडि छलु हरिजन होई॥
सोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ।
भयेउ, न अहै, न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा।
बिधि हरिहर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा।
दो०-कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहि बड़ाई तासु।
राम लषन तुम सत्रुहन, सरिस सुअन सुचि जासु ॥ १६ ॥
सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी।

एहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू । सिर धरि राजरजायसु करहू।
राय राजपदु तुम्ह कहुँ दीन्हा । पिताबचनु फुर चाहिअ कीन्हा।
तजे रामु जेहि बचनहि लागी । तनु परिहरेउ रामबिरहागी।
नृपहि बचन प्रिय,नहि प्रिय प्राना । करहु तात पितुबचन प्रवाना।
करहु सीस धरि भूपरजाई । है तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई।
परसुराम पितुअग्याँ राखी । मारी मातु, लोग सब साखी।
तनय जजातिहि जौबनु दयऊ । पितुअग्या अघ अजसु न भयऊ।
दो०-अनुचित उचित बिचारु तजि, जे पालहिं पितु बयन ।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति-अयन ॥१७॥
अवसि नरेस बचन फुर करहू । पालहु प्रजा, सोक परिहरहू।
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू । तुम्ह कहँ सुकृतु सुजसु, नहिं दोषू।
बेदबिदित संमत सबही का । जेहि पितु देइ सो पावै टीका।
करहु राजु परिहरहु गलानी । मानहु मोर बचन हित जानी।
सुनि सुखु लहब रामबैदेही । अनुचित कहब न पंडित केही।
कौसल्यादि सकल महतारी । तेउ प्रजासुख होहिं सुखारी।
मरम तुम्हार राम कर जानिहि । सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि
सौंपेहु राजु राम के आएँ । सेवा करेहु सनेह सुहाएँ।
दो०-कीजिअ गुर आयसु अवसि, कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आएँ उचित जस, तस तब करब बहोरि ॥१८॥
कौसिल्या धरि धीरजु कहई । पूत पथ्य गुर आयसु अहई।
सो आदरिअ करिअ हित मानी । तजिअ बिषादु कालगति जानी।
बन रघुपति, सुरपुर नरनाहू । तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू।

परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा।
लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई।
सिर धरि गुरआयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुख हरहू।
गुर के बचन सचिव अभिनंदनु। सुने भरत हिय हित जनु चंदनु
सुनी बहोरि मातु मृदुबानी। सील सनेह सरल रस सानी।
छंद-सानी सरल रस मातुबानी सुनि भरतु व्याकुल भए।
लोचनसरोरुह श्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सींव सहज सनेह की॥
सो०-भरत कमलकर जोरि, धीर-धुर-धर धीर धरि।
बचनु अमिअ जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहिं॥१६॥
मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का।
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा
गुर पितु-मातु-स्वामि हित-बानी। सुनिमनमुदितकरिअभलिजानी
उचित कि अनुचितकिए बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू।
तुम्ह तौ देउ सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई।
जद्यपि यह समुझत हौं नीके। तदपि होत परितोषु न जी के।
अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू।
उत्तर देउँ छमब अपराधू। दुखित-दोष-गुन गनहिं न साधू।
दो०-पितु सुरपुर सिय राम बन, करन कहहु मोहि राजु।
एहि ते जानहु मोर हित, कै आपन बड काजु॥२०॥
हित हमार सिय पति सेवकाई। सो हरि लीन्हि मातु-कुटिलाई।

मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं।
सोकसमाजु राजु केहि लेखे। लषन-राम-सिय-पद बिनु देखे।
बादि बसन बिनु भूषन-भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्मबिचारू।
सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जाय जप जोगा।
जायँ जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु रघुराई।
जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू।
मोहि नृपु करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जडतावस कहहू।
दो०–कैकेइसुअन कुटिल मति, रामबिमुख गतलाज।

तुम्ह चाहत सुखु मोहबस, मोहि से अधम के राज ॥१७॥
कहौं साँच सब सुनि पतियाहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू।
मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं।
मोहि समान को पापनिवासू। जेहि लगि सीयराम बनबासू।
राय राम कहुँ कानन दीन्हा। बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा।
मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनौं सचेतू।
बिनु रघुबीर बिलोकिय बासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू।
राम पुनीत बिषयरस रूखे। लोलुप भूमिभोग के भूखे।
कहँ लगि कहौं हृदय-कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहिं लही बडाई।
दो०–कारन तें कारजु कठिन, होइ दोसु नहिं मोर।

कुलिस अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर ॥१८॥
कैकेईभव तनु अनुरागे। पावँर प्रान अघाइ अभागे।
जौं प्रियबिरहँ प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे।
लषन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा। पठै अमरपुर पतिहित कीन्हा।

लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहिं सोकु संतापू।
मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू।
एहि तें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका।
कैकईजठर जनमि जग माहीं। एकमोहिकहँकछुअनुचितनाहीं
मोरि बात सब बिधिहि बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई।
दो०-ग्रहग्रहीत पुनि बातबस, तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी, कहहु कवन उपचार॥ २३॥
कैकइ सुअन-जोग जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई।
दसरथतनय राम लघु-भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बडाई।
तुम्ह सबु कहहु कढावन टीका। रायरजायसु सब कहँ नीका।
उतर देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथारुचि जेही।
मोहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्हि भलाई।
मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सियरामु प्रानप्रिय नाहीं।
परम हानि सब कह बड लाहू। अदिन मोर नहिं दूषन काहू।
संसय सील प्रेमबस अहहू। सबुइ उचितमनु जोकछु कहहू।
दो०-राममातु सुठि सरलचित, मो पर प्रेमु बिसेखि।
कहै सुभाय सनेहबस, मोरि दीनता देखि॥ २४॥
गुरु बिबेक सागर जग जाना। जिन्हहिं बिस्व करबदर समाना
मो कहँ तिलकसाज सज सोऊ। भएबिधि बिमुखबिमुखसबकोऊ।
परिहरि रामुसीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोरमत नाहीं।
सो मैं सुनब सहब सुख मानी। अतहुँ कीच तहाँ जहँ पानी।
डर न मोहि जग कहिहिकिपोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू।

एकै उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सियराम दुखारी।
जीवनलाहु लषन भल पावा। सबु तजि रामचरनु मनलागा।
मोर जनम रघुवरबन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी।
दो०-आपन दारुन दीनता, कहौं सबहिं सिर नाइ।
देखे बिनु रघुनाथ पद, जिय कै जरनि न जाइ॥ २५॥
आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा।
एकहि आँक इहै मन माहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाहीं।
जद्यपि मैं अनभल अपराधी। भइ मोहिकारन सकल उपाधी।
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमिसब करिहहिं कृपा बिसेखी।
सीलु सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा-सनेह-सदन रघुराऊ।
अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवकु जद्यपि बामा।
तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी।
जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी।
दो०-जद्यपि जनमु कुमातु तें, मैं सठ सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहि रघुबीर भरोस॥ २६॥

जगु भयमगन गगन भइ बानी। लषन बाहु बलु बिपुल बखानी।
तात प्रतापप्रभाउ तुम्हारा। को कहि सके, को जाननिहारा।
अनुचित उचित काज किछु होऊ। समुझि करिअ भल कहसब कोऊ।
सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं।
सुनि सुरवचन लषन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने।
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई।
जो अँचवत माँतहिं नृप तेई। नाहिंन साधु सभा जेहि सेई।
सुनहु लषन भल भरतसरीसा। बिधिप्रपंच महँ सुना न दीसा।
दो०-भरतहि होइ न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजीसीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ ॥ ६ ॥
गुरुअनुरागु भरत पर देखी। रामहृदय आनदु बिसेखी।
भरतहिं धरम धुर धर जानी। निज सेवक तन मानस रानी।
बोले गुरु आयसु-अनुकूला। बचन मञ्जु मृदु मंगलमूला।
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयेउ न भुवन भरतसम भाई।
जे गुर पद अम्बुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बडभागी।
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सके भरत कर भागू।
लखि लघुबधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरतबडाई।
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई।
दो०-तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोचु तजि तात।

दो०–ससि गुर तिय गामी नहुषु, चढ़ेउ भूमि सुर जान।
लोकबेद तें बिमुख भा, अधम न बेनसमान ॥ ३ ॥
सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू।
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ।
एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे राम जानि असहाई।
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी। समर सरोष राममुख पेखी।
एतना कहत नीतिरस भूला। रन रस बिटप पुलक मिस फूला।
प्रभुपद बंदि सीसरज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाखी।
अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचरा न थोरा।
कहँ लगि सहिअ रहिअ मन मारें। नाथसाथ धनु हाथ हमारें।
दो०–छत्रिजाति रघु-कुल जनमु, रामअनुग जगु जान।
लातहुँ मारें चढ़ति सिर, नीच को धूरिसमान ॥ ४ ॥
उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहुँ बीररस सोवत जागा।
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा।
आजु रामसेवक जसु लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ।
रामनिरादर कर फलु पाई। सोवहु समरसेज दोउ भाई।
आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करौं रिस पाछिलि आजू।
जिमि करिनिकर दलै मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू।
तैसेहि भरतहि सेनसमेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता।
जौं सहाय कर संकर आई। तउ मारौं रन रामदोहाई।
दो०–अतिसरोष माखे लषनु, लखि सुनि सपथप्रवान।
सभय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान ॥ ५ ॥

गुरु भयमगन गगन भइ बानी । लषन बाहु बलु बिपुल बखानी ।
न प्रतापप्रभाउ तुम्हारा । को कहि सके, को जाननिहारा।
अनुचित उचित काज किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सब कोऊ।
सहसा करि पाछें पछिताहीं । कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ।
सुनि सुरबचन लषन सकुचाने । राम सीय सादर सनमाने ।
कही तात तुम्ह नीति सुहाई । सब तें कठिन राजमदु भाई ।
जो अँचवत माँतहिं नृप तेई । नाहिंन साधु सभा जेहिं सेई ।
सुनहु लषन भल भरतसरीसा । बिधिप्रपंच महँ सुना न दीसा ।
दो०-भरतहि होइ न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजीसीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ ॥ ६ ॥
गुरुअनुरागु भरत पर देखी । रामहृदय आनदु बिसेषी ।
भरतहिं धरम धुरंधर जानी । निज सेवक तन मानस बानी ।
बोले गुरु आयसु-अनुकूला । बचन मंजु मृदु मंगलमूला ।
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भयेउ न भुवन भरतसम भाई ।
जे गुर पद अंबुज अनुरागी । ते लोकहुँ बेदहुँ बडभागी ।
राउर जा पर अस अनुरागू । को कहि सके भरत कर भागू।
लखि लघुबंधु बुद्धि सकुचाई । करत बदन पर भरतबडाई ।
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई । अस कहि राम रहे अरगाई ।
दो०-तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोचु तजि तात ।
कृपासिंधु प्रियबंधु सन, कहहु हृदय कइ बात ॥७॥
सुनि मुनि बचन रामरुख पाई । गुरु साहिब अनुकूल अघाई ।
लखि अपने सिर सबु छरभारू । कहिन सकहिंकछुकरहिंबिचारू

पुलकि सरीर सभा भए ठाढ़े। नीरजनयन नेहजल बाढ़े।
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहउँ मैं काहा।
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ।
मो पर कृपा सनेहु बिसेखी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी।
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू।
मैं प्रभु कृपारीति जिय जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही।
दो०–महूँ सनेह-सँकोच बस, सनमुख कहे न बयन।
दरसन तृपित न आजु लगि, प्रेम पियासे नयन॥८॥
बिधिन सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिस पारा।
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि कोभा।
मातु मंद मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली।
फरै कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक ताली।
सपनेहु दोस कलेसु न काहू। मोर अभाग उदधिअवगाहू।
बिनु समझें निज अघ-परिपाकू। जारिउँ जाय जननि कहि काकू।
हृदय हेरि हारेउ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा।
गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू।
दो०–साधु सभा गुर प्रभु निकट, कहौं सुथल सतिभाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ॥९॥
भूपतिमरन प्रेम पनु राखी। जननी कुमति जगत सब साखी।
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर-नर-नारी।
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला।
सुनि बनगवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनिबेष लषन-सियसाथा।

बिन पानहिन्ह पयादेहि पाएँ । सकरु साखि रहेउँ एहि घाएँ ।
बहुरि निहारि निपादसनेहू । कुलिस कठिन उर भयेउ न बेहू ।
अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई । जिअत जीव जड़ सबइ सहाई ।
जिन्हहिंनिरखिमगसाँपिनिबीछी॥ तजहिं विषमविषतामसतीछी ।
दो०–तेइ रघुनंदनु-लषनु सिय, अनहित लागे जाहि ।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैव सहावै काहि ॥१०॥
सुनिअति बिकल भरत-बर-बानी । आरति प्रीति बिनय-नय सानी ।
सोकमगन सब सभा खभारू । मनहुँ कमलबन परेउ तुसारू ।
कहि अनेक विधि कथा पुरानी । भरतप्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ।
बोले उचित बचन रघुनंदू । दिनकर-कुल-कैरव-बन-चंदू ।
तात जायँ जिअ करहु गलानी । ईसअधीन जीवगति जानी ।
तीनि काल तिभुवन मत मोरें । पुन्यसिलोक तात तर तोरें ।
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाइ लोक परलोकु नसाई ।
दोषु देहिं जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुर-साधु सभा नहिं सेई ।
दो०–मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार ।
लोक-सुजसु परलोक सुखु, सुमिरत नामु तुम्हार ॥११॥
कहौं सुभाउ सत्य सिव साखी । भरत भूमि रह राउरि राखी ।
तात कुतरक करहु जनि जाए । बैर प्रेम नहिं दुरे दुराएँ ।
मुनिगन निकट बिहँग मृग जाहीं । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ।
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना । मानुषतनु गुन-ग्यान निधाना ।
तात तुम्हहि मैं जानौं नीके । करौं काह असमंजस जीके ।
राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी । तनु परिहरेउ प्रेमपन लागी ।

तासु वचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहौं सोइ कीन्हा॥
दो०-मनु प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करउँ सोइ आजु।
सत्य-सन्ध-रघुवर-वचन, सुनि भा सुखी समाजु॥१२॥
सुर-गन-सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू॥
बनत उपाउ करत कछु नाहीं। रामसरन सब गे मन माहीं॥
बहुरि विचारि परसपर कहहीं। रघुपतिभगत-भगति-बस अहहीं॥
सुधि करि अंबरीष, दुरवासा। भे सुर, सुरपति निपट निरासा॥
सहे सुरन्ह बहु काल विषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुर-काज भरत के हाथा॥
आन उपाउ न देखिय देवा। मानत रामु सु-सेवक-सेवा॥
हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहि। निज-गुन सील राम बस करतहि॥
दो०—सुनि सुरमत सुरगुरु कहेउ, भल तुम्हार बड़भागु।
सकल सु-मंगल मूल जग, भरत चरन अनुरागु॥१३॥
सीतापति-सेवक-सेवकाई। कामधेनु-सय-सरिस सुहाई॥
भरतभगति तुम्हरें मन आई। तजहु सोचु विधि बात बनाई॥
देखु देवपति भरतप्रभाऊ। सहज-सुभाय-विबस रघुराऊ॥
मन थिर करहु देव डरु नाहीं। भरतहिं जानि रामपरिछाहीं॥
सुनि सुरगुरु-सुरसमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहिं सँकोचू॥
निज सिर भार भरतु जिय जाना। करत कोटि विधि उर अनुमाना॥
करि विचार मन दीन्ही ठीका। रामरजायसु आपन नीका॥
निजपन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेह कीन्ह नहिं थोरा॥

दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरतु, जोरि जलज-जुग हाथ ॥१४॥

कहौं कहावौं का अब स्वामी। कृपा-अंबु निधि अंतरजामी।
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मनकलपित सूला।
अपडर डरेउँ न सोच समूले। रबिहि न दोषु देव दिसि भूले।
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषमकाल कठिनाई।
पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला।
यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहु बेद बिदित नहिं गोई।
जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाई।
देउ देव-तरु-सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ।

दो०—जाइ निकट पहिचानि तरु, छाँह समनि सब सोच।
माँगत अभिमत पाव जग, राउ रंक भल पोच ॥१५॥

लखि सब बिधि-गुर-स्वामि-सनेहू। मिटेउ छोभ नहिं मन संदेहू।
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभुचित छोभ न होई।
जो सेवकु साहिबहिं सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची।
सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई।
स्वारथु नाथ फिरें सबही का। किएँ रजाइ कोटि बिधि नीका।
यह स्वारथ-परमारथ-सारू। सकल-सुकृत-फलसुगति सिंगारू।
देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी।
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मन माना।

दो०—सानुज पठइअ मोहिं बन, कीजिअ सबहिं सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ, नाथ चलउँ मैं साथ ॥१६॥

ननरु जाहिं वन तीनिउँ भाई । बहुरिअ सीयसहित रघुराई ।
जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई । करुनासागर कीजिअ सोई ।
देव दीन्ह सब मोहि अभारू । मोरे नीति न धरम विचारू ।
कहउँ वचन सब स्वारथ हेतू । रहत न आरत के चित चेतू ।
उतरु देइ सुनि स्वामिरजाई । सो सेवकु लखि लाज लजाई ।
अस मैं अवगुन-उदधि-अगाधू । स्वामि-सनेह सराहत साधू ।
अब कृपाल मोहि सो मत भावा । सकुच स्वामि मन जाइन पावा ।
प्रभु-पद-सपथ कहौं सतिभाऊ । जग-मगल-हित एक उपाऊ ।
दो०-प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव ।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु, मिटहि अनट अवरेव ॥१७॥
सुनि भूपाल भरत व्यवहारू । सोन सुगध सुधा ससिसारू ।
मूँदे सजल नयन पुलके तन । सुजसु सराहन लगे मुदितमन
सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि । भरतकथा भव-बध विमोचनि
धरम राजनय ब्रह्मविचारू । इहाँ जथामति मोर प्रचारू ।
सो मति मोरि भरत महिमाही । कहै काह, छलि छुअति नछाहीं ।
विधिगनपतिअहिपतिसिवनारद । कवि कोविद बुध बुद्धिविसारद
भरत चरित कीरति करतूती । धरम सील गुन विमलविभूती ।
समुझत सुनत सुखद सब काहू । सुचिसुरसरिरुचिनिदर सुधाहू
दो०-निरवधि गुन निरुपम पुरुषु, भरतु भरतसम जानि ।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम, कवि-कुल-मति सकुचानि॥१८॥
अगम सबहिं बरनत बरबरनी । जिमि जलहीन मीन गमु धरनी ।
भरत अमित महिमा सुनु रानी । जानहिं रामु न सकहिं बखानी ।

बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तियजिय की रुचि लखि कह राऊ।
बहुरहिं लषन, भरतु बन जाहीं। सब कर भल सबके मन माहीं।
देवि! परतु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी।
भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि राम सींव समता की।
परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे।
साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरतमत एहू।
दो०-भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं, मनसहुँ रामरजाइ।
करिअ न सोच सनेहबस, कहेउ भूप बिलखाइ ॥२८९॥

सीता को अनुसूया का उपदेश

अनसूया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील विनीता।
जो सिय सकल लोक सुखदाता। अखिल लोक ब्रह्माड कि माता।
तेउ पाइ मुनिवर मुनिभामिनि। सुखी भई कुमुदिनि जिमि जामिनि
रिषि पतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ निकट बैठाई।
दिव्य वसन भूषन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए।
जाहि निरखि दुख दूरि पराहीं। गरुड जानि जिमि पन्नग जाहीं।
दो०-ऐसे वसन विचित्र सुठि, दिए सीय कहँ आनि।
सनमानी प्रियवचन कहि, प्रीति न जाइ बखानि॥१॥
कह रिषिवधू सरस मृदु वानी। नारिधरम कछु ब्याज बखानी।
मातु, पिता, भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी।
अमितदानि भर्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही।
धीरजु धरम मित्र अरु नारी। आपदकाल परखियहि चारी।
वृद्ध रोगवस जड धनहीना। अध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।
एकइ धरम एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद-प्रेमा।
जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं। बेद पुरान सत सब कहहीं।
दोह०-उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहौं समुझाइ।
आगे सुनहिं ते भव तरहिं, सुनहु सीय चितु लाइ॥२॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं।

अधम परपति देखै कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे।
धरम बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहई।
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई।
पतिबंचक पर पति-रति करई। रौरव नरक कलप सत परई।
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी।
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पति ब्रत धरम छाँडि छल गहई।
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई।

सो०-सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहै।
जसु गावत श्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥३॥
सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम, कहेउँ कथा संसारहित॥४॥

सुनि जानकी परम सुख पावा। सादर तासु चरन सिर नावा।
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना।
संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू।
धरम धुरंधर प्रभु कै बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी।
जासु कृपा अज सिव सनकादी। चहत सकल परमारथबादी।
ते तुम्ह राम अकाम-पिआरे। दीनबंधु मृदु बचन उचारे।
अब जानी मैं श्रीचतुराई। भजिअ तुम्हहिं सब देव बिहाई।
जेहि समान अतिसय नहिं कोई। ता कर सील कस न अस होई।
केहि बिधि कहौ जाहु अब स्वामी। कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी।
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा। लोचन जल बह पुलक सरीरा।

छंद-तन पुलकनिर्भर प्रेमपूरन नयन मुख-पंकज दिए।
मन ग्यान गुन-गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए॥
जप जोग धरम समूह ते नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिनु दास तुलसी गावई॥
दो०-कलि मल-समनु दमनु दुख, रामसुजसु सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिन्हहिं पर, राम रहहिं अनुकूल॥५॥
सो०-कठिन काल मल-कोस, धरम न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस, रामहिं भजहिं ते चतुर नर॥६॥

छंद-तन पुलकनिर्भर प्रेमपूरन नयन मुख-पंकज दिए।
मन ग्यान गुन-गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए॥
जप जोग धरम समूह ते नर भगति अनुपम पावई।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिनु दास तुलसी गावई॥
दो०-कलि मल-समन दमनु दुख, रामसुजसु सुखमूल।
सादर सुनहिं जे तिन्हहिं पर, राम रहहिं अनुकूल॥५॥
सो०-कठिन काल मल-कोस, धरम न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस, रामहिं भजहिं ते चतुर नर॥६॥

राम जबहिं प्रेरेहु निज माया । मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ।
तब बिबाह मैं चाहौं कीन्हा । प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ।
सुनु मुनि तोहि कहौ सह रोसा । भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा
करौ सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालकहिं राख महतारी ।
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखै जननी अरु गाई ।
प्रौढ़ भये तेहि सुत पर माता । प्रीति करै नहिं पाछिलि बाता ।
मोरे प्रौढ़-तनय-सम ग्यानी । बालक सुत सम दास अमानी ।
जनहिं मोर बल निज बल ताही । दुहुँ कहँ काम क्रोध रिपु आही ।
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं । पायहु ग्यान भगति नहिं तजहीं ।
दो०—काम-क्रोध-लोभादि-मद, प्रबल मोह के धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि ॥ ७ ॥
सुनि मुनि कह पुरान श्रुति संता । मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ।
जप तप नेम जलासय झारी । होइ ग्रीषम सोखै सब नारी ।
काम क्रोध मद मत्सर भेका । इनहिं हरषप्रद बरषा एका ।
दुर्बासना कुमुदसमुदाई । तिन्ह कहँ सदा सरद सुखदाई ।
धरम सकल सरसीरुह-बृंदा । होइ हिम तिन्हहिं देति दुखदंदा ।
पुनि ममता जवासनहुताई । पलुहै नारि सिसिररितु पाई ।
पाप उलूकनिकर सुखकारी । नारि निबिड रजनी अँधियारी ।
बुधि बल सील सत्य सब मीना । बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ।
दो०—अवगुनमूल सूलप्रद, प्रमदा सब दुखखानि ।
ता तें कीन्ह निवारन, मुनि मैं यह जिय जानि ॥ ८ ॥
सुनि रघुपति के बचन सुहाए । मुनि तन पुलक नयन भरि आए ।

विरहवत भगवतहिं देखी। नारदमन भा सोच विसेखी।
मोर श्राप करि अगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा।
ऐसे प्रभुहिं विलोकौं जाई। पुनि न वनिहि अस अवसर आई
यह विचारि नारद करबीना। गए जहाँ प्रभु सुखआसीना।
गावत राम-चरित मृदुवानी। प्रेमसहित वहु भाँति वखानी।
करत दडवत लिए उठाई। राखे वहुत वार उर लाई।
स्वागत पूछि निकट वैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे।
दो०—नाना विधि विनती करि, प्रभु प्रसन्न जिय जानि। -
नारद वोले वचन तव, जोरि, सरोरुहपानि ॥४॥
सुनहु उदार परम रघुनायक। सुन्दर अगम सुगम वरदायक।
देहु एक वर माँगौं स्वामी। जद्यपि जानत अन्तरजामी।
जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कवहुँ कि करौ दुराऊ।
कवनि वस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम्ह माँगी
जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस विस्वास तजहु जनि भोरें।
तव नारद वोले हरषाई। अस वर माँगौं करौं ढिठाई।
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका
राम सकल नामन्ह तें अधिका। होउ नाथ अघ खग-गन वधिक
दो०—राका-रजनी भगति तव, रामनाम सोइ सोम।
अपर नाम उडुगन विमल, वसहु भगत उर व्योम ॥५॥
एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिंधु रघुनाथ।
तव नारद मन हरष अति, प्रभुपद नायेउ माथ ॥६॥
अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद वाले मृदुवानी

दो०-रावनारिजस पावन, गावहिं सुनहिं जे लोग।
रामभगति दृढ़ पावहीं, बिनु बिराग जप जोग ॥ १० ॥
दीप सिखा सम जुबतिजन, मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद, करहि सदा सतसंग ॥ ११ ॥

कहहु कवन प्रभु कै अस रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती।
जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यानरंक नर मंद अभागी।
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिसारद।
संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भंजन भवभीरा।
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊं। जिन्ह ते मैं उन्ह के बस रहऊं।
षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा।
अमित बोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कबि कोबिद जोगी।
सावधान मानद मदहीना। धीर भगतिपथ परम प्रबीना।
दो०—गुनागार संसार-दुख, रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरनसरोज प्रिय, जिन्ह कहुँ देह न गेह ॥ ६ ॥
निज गुनि श्रवन सुनत सकुचाहीं। परगुन सुनत अधिक हरषाहीं।
सम सीतल नहि त्यागहिं नीती। सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती।
जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु-गोबिंद-बिप्र-पद प्रेमा।
श्रद्धा छमा मइत्री दाया। मुदिता मम पदप्रीति अमाया।
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेदपुराना।
दंभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ।
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु-रहित पर-हित-रत सीला।
सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते।
छंद-कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद-पंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपालु अपने भगतगुन निज मुख कहे ॥
सिर नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि-रँग रए ॥

कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना।
देखिअत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं।
ऊसर बरष तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा।
विविध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इंद्रियगन उपजें ग्याना।
दो०-कबहुँ प्रबल बह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें, कुल सद्धर्म नसाहिं॥ ३॥
कबहुँ दिवस महुँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसै उपजै ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग॥ ४॥
बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई।
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषा कृत प्रगट बुढ़ाई।
उदित अगस्त पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषै संतोषा।
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत-मद-मोहा।
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी।
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए।
पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति-निपुन-नृप कै जसि करनी।
जल संकोच बिकल भे मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना।
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा।
कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जसि मोरी।
दो०-चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम, तजहिं आस्रमी चारि॥५॥
सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरिसरन न एकौ बाधा।

वर्षा-शरद-वर्णन

दो०-लछिमन देखहु मोरगन, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरतिरत हरप जस, विष्णुभगत कहुँ देखि ॥१॥

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया-हीन डरपत मन मोरा।
दामिनि दमकि रह न घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं।
बरषहिं जलद भूमि नियराए। जथा नवहिं बुध विद्या पाए।
बुंद अघात सहहिं गिरि कैसें। खल के वचन संत सह जैसें।
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई।
भूमि परत भा ढाबर पानी। जिमि जीवहि माया लपटानी।
सिमिटिसिमिटिजलभरहितलावा। जिमिसदगुनसज्जनपहिंआवा
सरिताजल जलनिधि महुँ जाई। होहिअचल जिमि जिव हरि पाई

दो०-हरित भूमि तृनसकुल, समुझि परहिं नहिं पथ।
जिमि पाखंड-विवाद तें, गुप्त होहिं सदग्रंथ ॥ २ ॥

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई। वेद पढहिं जनु बटुसमुदाई।
नव पल्लव भए विटप अनेका। साधक मन जस मिले विवेका।
आक जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ।
खोजत कतहुँ मिलै नहिं धूरी। करै क्रोध जिमि धर्महि दूरी।
ससससम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी।
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन कर मिला समाजा।
महावृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि सुतंत्र भए बिगरहिं नारी।

सीता-रावण सम्वाद

दो०-निज पद नयन दिए मन, रामचरन महँ लीन।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन ॥ १ ॥

तरुपल्लव महँ रहा लुकाई। करै विचार करौं का भाई।
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किए बनावा।
बहु बिधि खल सीतहिं समुझावा। साम दाम भय भेद देखावा।
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी।
तव अनुचरी करौं पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा।
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही।
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करै बिकासा।
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।
सठ सूने हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।

दो०-आपुहि सुनि खद्योतसम, रामहिं भानुसमान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान ॥२॥

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहौं तव सिर कठिन कृपाना।
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होत न त जीवनहानी।
स्याम-सरोज-दाम-समसुंदर। प्रभुभुज करि कर-सम, दसकंधर।
सो भुजकंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।
चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति-बिरह-अनल-संजातं।

फूले कमल सोह सर कैसे। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसे।
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खगरव नाना रूपा।
चक्रवाक-मन दुख निसि पेखी। जिमि दुरजन परसंपति देखी।
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहै न संकरद्रोही।
सरदातप निसि ससि अपहरई। संतदरस जिमि पातक टरई।
देखि इंदु चकोरसमुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई।
मसकदंस बीते हिमत्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुलनासा।
दो०—भूमि जीव-संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सदगुरु मिलें जाहिं जिमि संसय-भ्रम-समुदाइ॥

सीता-रावण सम्वाद

दो०-निज पद नयन दिए मन, रामचरन महँ लीन।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन ॥ १ ॥

तरुपल्लव महँ रहा लुकाई। करै बिचार करौं का भाई।
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किए बनावा।
बहु बिधि खल सीतहिं समुझावा। साम दाम भय भेद देखावा।
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी।
तव अनुचरी करौं पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा।
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही।
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी कर बिकासा।
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।
सठ सूने हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।

दो०-आपुहि सुनि खद्योतसम, रामहिं भानुसमान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि, बोला अति खिसियान ॥२॥

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहौं तव सिर कठिन कृपाना।
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होत न त जीवनहानी।
स्याम-सरोज-दाम-समसुंदर। प्रभुभुज करि कर-सम, दसकंधर
सो भुजकंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।
चंद्रहास हरु मम परिताप। रघुपति-बिरह-अनल-संजात।

सीतल निसि तव असि वर धारा। कह सीता हरु मम दुखभारा।
सुनत वचन पुनि मारन धावा। मयतनया कहि नीति बुझावा।
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु विधि त्रासहु जाई।
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढि कृपाना।
दो०-भवन गयेउ दसकंधर, इहाँ पिसाचिनिवृंद।
सीतहिं त्रास देखावहिं, धरहिं रूप बहु मंद ॥ ३ ॥
त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिवेका।
सबन्हौ बोलि सुनायेसि सपना। सीतहिं सेइ करहु हित अपना।
सपने बानर लंका जारी। जातुधानसेना सब मारी।
खरआरूढ नगर दससीसा। मुंडित सिर खंडित-भुज बीसा
एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई।
यह सपना मैं कहौं पुकारी। होइहि सत्य गए दिन चारी।
तासु वचन सुनते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं।
दो०-जहँ तहँ गई सकल तब, सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीते मोहि, मारिहि निसिचर पोच ॥४॥
त्रिजटा सन बोली कर जोरी। मातु बिपतिसंगिनि तैं मोरी।
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह विरह अब नाहिं सहि जाई
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई।
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूलसम बानी।
सुनत वचन पद गहि समुझायेसि। प्रभु प्रताप-बल-सुजस सुनायेसि
निसिन अनल मिलु सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी

कह सीता विधि भा प्रतिकूला। मिलहि न पावक मिटहि न सूला।
देखिअत प्रगट गगन अगारा। अवनि न आवत एको तारा।
पावकमय ससि श्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी।
सुनहि विनय मम बिटप असोका। सत्य नाम कर हर मम सोका।
नूतन किसलय अनलसमाना। देहि अगिनि, जनि करहि निदाना
देखि परम विरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलपसम बीता।
सो०–कपि करि हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥५॥

लक्ष्मण शक्ति और कुम्भकर्ण-वध

दो०—देखा भरत बिसाल अति, निसिचर मन अनुमान।
बिनु फर सर तकि मारेउ, चाप श्रवन लगि तान ॥१॥
परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक।
सुनि प्रिय वचन भरतु उठि धाए। कपि समीप अति आतुर आए।
बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भाँति जगावा।
मुख मलीन मन भए दुखारी। कहत वचन लोचन भरि बारी।
जेहि बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा। तेहि पुनि यह दारुन दुखु दीन्हा
जौं मोरे मन बच अरु काया। प्रीति राम-पद-कमल अमाया।
तौ कपि होउ बिगत-श्रम-सूला। जौं मो पर रघुपति अनुकूला।
सुनत वचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा।
सो०—लीन्ह कपिहिं उर लाइ, पुलकित तन लोचन सजल।
प्रीति न हृदय समाइ, सुमिरि राम रघु-कुल तिलक ॥२॥
तात कुसल कहु सुख निधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी।
कपि सब चरित सक्षेप बखाने। भए दुखी मन महुँ पछिताने।
अहह दैव मैं कत जग जायेउँ। प्रभु के एकहु काज न आयेउँ।
जानि कुअवसर मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बल बीरा।
तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता।
चढु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहिं जहँ कृपानिकेता।
सुनि कपिमन उपजा अभिमाना। मोरे भार चलिहि किमि बाना।

रामप्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कपि कह कर जोरी।
तव प्रताप उर राखि गोसाईं। जैहों रामबान की नाईं।
भरत हरषि तब आयसु दयेऊ। पद सिरनाइ चलत कपि भयेऊ।
दो०—भरत बाहु-बल सील-गुन, प्रभु-पद प्रीति अपार।
जात सराहत मनहिं मन, पुनि पुनि पवन कुमार ॥३॥
उहाँ राम लछिमनहिं निहारी। बोले बचन मनुज अनुहारी।
अर्धराति गइ कपि नहिं आवा। राम उठाइ अनुज उर लावा।
सकहु न दुखित देखि मोहिं काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ।
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेउ बिपिन हिम आतप बाता।
सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बचबिकलाई।
जौं जनतेउँ बन बंधुबिछोहू। पितावचन मनतेउँ नहिं ओहू।
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।
अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलै न जगत सहोदर भ्राता।
जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर करहीना
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जियावै मोही।
जैहौं अवध कवन मुँह लाई। नारिहेतु प्रिय भाइ गवाँई।
बरु अपजसु सहतेउँ जग माहीं। नारिहानि बिसेष छति नाहीं।
अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा।
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा।
सौंपेसि मोहि तुम्हहिं गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी
उतर काह देहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई।
बहु बिधि सोचत सोचबिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन

उमा एक अखंड रघुराई। नरगति भगतकृपालु देखाई।
सो०-प्रभुविलाप सुनि कान, विकल भए वानरनिकर।
आइ गयेउ हनुमान, जिमि करुना महँ वीर रस ॥ ४ ॥
हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना।
तुरत वैद तव कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमनु हरषाई।
हृदय लाइ भेंटेउ प्रभु भ्राता। हरषे सकल भालु कपि-व्राता।
पुनि कपि वैद तहाँ पहुँचावा। जेहि विधि तवहि ताहि लेइ आन
यह वृत्तांत दसानन सुनेऊ। अतिविषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ।
व्याकुल कुंभकरन पहिं गयेऊ। करि वहु जतन जगावत भयेऊ।
जागा निसिचर देखिअ कैसा। मानहुँ कालु देह धरि वैसा।
कुंभकरन बूझा सुनु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई।
कथा कही सब तेहि अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी।
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा-महा-जोधा सघारे।
दुर्मुख सुररिपु मनुजअहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी।
अपर महोदर आदिक वीरा। परे समरमहि सब रनधीरा।
दो०-सुनि दस-कंधर-वचन तव, कुंभकरनु विलखान।
जगदंबा हरि आनि अब, सठु चाहत कल्यान ॥ ५ ॥
भल न कीन्ह तैं निसि-चर-नाहा। अब मोहि आइ जगायेहि काहा
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना
है दससीस मनुज रघुनायक। जा के हनूमान से पायक।
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई। प्रथमहिं मोहि न सुनायेहि आई।
कीन्हेहु प्रभुविरोध तेहि देवक। सिव विरंचि सुर जाके सेवक

नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरवहा।
अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौं मैं जाई।
स्यामगात सरसी-रुह-लोचन। देखौ जाइ ताप-त्रय मोचन।
दो०-राम रूप-गुन सुमिर मन, मगन भयेउ छन एक।
रावन माँगेउ कोटि घट, मद अरु महिष अनेक॥ ६॥
महिष खाइ करि मदिरापाना। गर्जा बज्राघात समाना।
कुंभकरन दुर्मद रनरंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा।
देखि बिभीषनु आगे आयेउ। परेउ चरन निज नाम सुनायेउ।
अनुज उठाइ हृदय तेहि लावा। रघु-पति भगत जानि मन भावा।
तात लात रावन मोहि मारा। कहत परमहित मंत्रबिचारा।
तेहि गलानि रघुपति पहिं आयेउँ। देखि दीन प्रभु के मन भायेउँ।
सुनु सुत भयेउ कालबस रावनु। सो कि मान अब परम सिखावनु।
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयेउ तात निसि-चर-कुल भूषन।
बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर।
दो०-बचन कर्म मन कपटु तजि, भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि, भयेउँ कालबस बीर॥ ७॥
बंधुबचन सुनि फिरा बिभीषन। आयेउ जहँ त्रै-लोक बिभूषन।
नाथ भूधरा-कार-सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा।
एतना कपिन्ह सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना।
लिए उपारि बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर।
कोटि कोटि गिरि-सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक बारा।
मुरै न मन तन टरै न टारा। जिमि गज अर्क फलन्हि कर मारा

तब मारुतसुत मुठिका हनेऊ। परेउ धरनि व्याकुल सिर धुनेऊ॥
पुनि उठि तेहिं मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परेउ तुरंता॥
पुनि नल नीलहि अवनि पछारेसि। जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारेसि॥
चली बली-मुख-सेन पराई। अति भय त्रसित न कोउ समुहाई॥
दो०-अंगदादि कपि मुर्छित, करि समेत सुग्रीवँ।
काँख दाबि कपिराज कहुँ, चला अमित बल-सींवँ॥ ८॥
उमा करत रघुपति नरलीला। खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला॥
भृकुटि भंग कालहि जो खाई। ताहि कि सोहै ऐसि लराई॥
जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं॥
मुरछा गइ मारुतसुत जागा। सुग्रीवँहि तब खोजन लागा॥
सुग्रीवँहु कै मुरुछा बीती। निबुकि गयेउ तेहि मृतक प्रतीती॥
काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चला तेहि जाना॥
गहेउ चरन धरि धरनि पछारा। अति लाघव उठि पुनि तेहि मारा॥
पुनि आयेउ प्रभु पहिं बलवाना। जयति जयति जय कृपानिधाना॥
नाक कान काटे सोइ जानी। फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी॥
सहज भीम पुनि बिनु श्रुति नासा। देखत कपिदल उपजी त्रासा॥
दो०—जय जय जय रघु बंस-मनि, धाए कपि दै हूह।
एकहि बार जो तासु पर, छाडेन्हि गिरि तरु-जूह॥९॥
कुंभकरन रनरंग बिरुद्धा। सनमुख चला काल जनु क्रुद्धा॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीडी गिरिगुहा समाई॥
कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा॥
मुख नासा श्रवनन्हि की बाटा। निसरि पराहिं भालु-कपि ठाटा॥

रनइ मद मत्त निसाचर दर्पा। विस्व ग्रसिहि जनुएहिविधिअर्पा
मुरे सुभट रन फिरहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहिं नहिं टेरे।
कुंभकरन कपिफौज बिडारी। सुनि धाई रजनी-चर-धारी।
देखी राम बिकल कटकाई। रिपुअनीक नाना बिधि आई।
दो०—सुनु सौमित्र कपीस तुम, सकल सँभारेहु सैन।
मैं देखउँ खल-दल-बलहि, बोले राजिवनैन ॥१०॥
कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल-दलनि चले रघुनाथा।
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुषटकोरा। रिपुदल बधिर भयेउसुनि सोरा।
सत्यसंध छाँडे सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा।
जहँ तहँ चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा।
कटहिं चरन उर सिर भुजदंडा। बहुतक बीर होहिं सत खंडा।
घुमि घुमि घायल महि परहीं। उठि सँभारि सुभट पुनि लरहीं।
लागत बान जलद जिमि गाजहिं। बहुतक देखि कठिन सर भाजहिं।
रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं। धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं।
दो०—छन महँ प्रभु के सायकन्हि, काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर निषंग महँ, प्रबिसे सब नाराच ॥११॥
कुंभकरन मन दीख बिचारी। हती निमिष महँ निसिचर धारी।
भयेउ क्रुद्ध दारुन बल बीरा। करि मृग नायक नाद गँभीरा।
कोपि महीधर लेइ उपारी। डारि जहँ मर्कटभट भारी।
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रजसम करि डारे।
पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाँडे अति कराल बहु सायक।
तनमहँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जनु दामिनि घन माँझ समाहीं।

सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जलगिरि गेरुपनारे।
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहँसा जबहिं निकटभट आए।
दो०—गर्जत धायेउ बेग अति, कोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकै गजराज इव, सपथ करे दससीस॥१२॥
भागे भालु-बलीमुख-जूथा। बृक बिलोकि जिमि मेषवरूथा।
चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरतवानी।
यहनिसिचरदु-काल समअहई। कपिकुल-देस परन अब चहई।
कृपा-बारि-धर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारतिहारी।
स-करुन-बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना।
राम सेन निज पाछे घाली। चले सकोप महा-बल-साली।
खैंचि धनुष सर सत सधाने। छूटे तीर सरीर समाने।
लागत सर धावा रिसभरा। कुधर डगमगत डोलति धरा।
लीन्ह एक तेहि सैल उपाटी। रघु-कुल-तिलक भुजासोईकाटी।
धावा बामबाहु गिरि धारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी।
काटे भुजा सोह खल कैसा। पच्छहीन मदरगिरि जैसा।
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका।
दो०—करि चिक्कार घोर अति, धावा बदन पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित, हा हा होत पुकारि॥१३॥
सभय देव करुनानिधि जानेउ। स्रवन प्रजत सरासन तानेउ।
बिसिखनिकर निसि-चर-मुखभरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ
सरन्हि भरा मुख सनमुख धावा। कालत्रोन सजीव जनु आवा।
तब प्रभु कोपि तीव्रसर लीन्हा। धर तें भिन्न तासु सिर कीन्हा।

सो सिर परेउ दसानन आगे। बिकल भयेउ जिमि फनिमनि त्यागे॥
धरनि धसै धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा॥
तासु तेज प्रभुबदन समाना। सुर मुनि सबहि अचंभो माना॥
नभ दुंदुभी बजावहिं हरषहिं। जय जय करि प्रसून सुर बरषहिं॥
करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय देवरिषि आए॥
गगनोपरि हरि-गुन गन गाए। रुचिर बीररस प्रभु मन भाए॥
बेगि हतहु खल कहि मुनि गए। राम समर महि सोहत भए॥

छंद—संग्रामभूमि बिराज रघुपति अतुलबल कोसलधनी।
श्रमबिंदु मुख राजीवलोचन रुचिर तन सोनितकनी॥
भुजजुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहुँ दिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने॥

दो०—निसिचर अधम मलायतन, ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति, जे न भजहिं श्रीराम॥ १४॥

राम-राज्य-वर्णन

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।
बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई।
दो०-बरनास्रम निज निज धरम, निरत वेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुख, नहिं भय शोक न रोग॥ १॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहि व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुतिरीती।
चारिहु चरन धरम जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।
राम-भगति-रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा। सब सुंदर सब विरुज सरीरा।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना।
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।
दो०-रामराज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाहिं॥ २॥
भूमि सप्त-सागर-मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।
भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू।
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी।
सो महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि येहि चरित तिन्हहुँ रति मानी।
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला।

रामराज कर सुख सपदा। बरनि न सकै फनीस सारदा।
सब उदार सब परउपकारी। विप्र-चरन-सेवक नरनारी।
एक-नारि-व्रत-रत सब भारी। ते मन बच क्रम पति हित कारी।
दो०—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्त्तक नृत्यसमाज।
जितहु मनहिं अस सुनिअ जग, रामचंद्र के राज ॥ ३ ॥
फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पचानन।
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई।
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लइ चलिमकरंदा।
लता बिटप माँगे मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं।
ससिसंपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृतजुग कै करनी।
प्रगटीं गिरिन्ह विविध मनिखानी। जगदातमा भूप जग जानी।
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वादु सुखकारी।
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रतन तटन्हि नर लहहीं।
सरसिज-संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा।
दो०—बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप, जेतनेहि काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचंद्र के राज ॥ ४ ॥
कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे।
श्रुति पथ-पालक धरम-धुरंधर। गुनातीत अरु भोगपुरंदर।
पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभाखानि सुसील बिनीता।
जानति कृपा-सिंधु-प्रभुताई। सेवति चरनकमल मनु लाई।
जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। बिपुल सकल सेवाबिधि-गुनी।

जिन कर गृहपरिचरजा करई। राम-चन्द्र-आयसु अनुसरई।
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवाबिधि जानइ।
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं।
उमा-रमा-ब्रह्मादि-वन्दिता। जगदंबा संततमनिंदिता।
दो०—जासु कृपाकटाच्छ सुर, चाहत चितवन सोइ।
राम-पदारबिंद-रति, करति सुभावहिं खोइ॥ ५॥
सेवहिं सानुकूल सब भाई। राम-चरन-रति अति अधिकाई।
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं
रामु करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती।
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुरदुर्लभ भोगा।
अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्री-रघु बीर-चरन रति चहहीं।
दुइ सुत सुन्दर सीता जाए। लव कुश बेद पुरानन्हि गाए।
दोउ बिजई बिनई गुनमंदिर। हरि-प्रति-बिंब मनहुँ अतिसुंदर।
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे।
दो०—ग्यान-गिरा गो-ऽतीत अज, माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंदघन, कर नरचरित उदार॥ ६॥
प्रातकाल सरजू करि मज्जन। बैठहिं सभासग द्विज सज्जन
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं रामु जद्यपि सब जानहिं
अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननी सुख भरहीं
भरत सत्रुहन दूनउ भाई। सहित पवनसुत उपवन जाई
बूझहिं बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहाव

सब के गृह होहिं बेद पुराना। रामचरित पावन बिधि नाना।
नर अरु नारि राम गुन गावहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं

दो०—अवध पुरी वासिन्ह कर, सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं, जहँ नृप राम बिराज॥ ७॥

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा।
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगरु बिराग बिसरावहिं
जातरूप मनि रचित अटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी।
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कँगूरा रंग रंग बर।
नवग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई।
महि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिवर मन नाचा।
धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं।

छंद—मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी बिद्रुम रची।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची॥
सुन्दर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे॥

दो०—चारु चित्रसाला रुचिर, प्रति गृह लिखे बनाइ।
रामचरित जे निरख मुनि, ते मन लेहिं चोराइ॥ ८॥

सुमन वाटिका सबहिं लगाईं। बिबिध भाँति करि जतन बनाईं।
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत कि नाईं।

गुंजन मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिविधि सदा बह सुंदर।
नाना खग बालकन्हि जिआए। बोलत मधुर उडात सुहाए।
मोर हंस सारस पारावत। भवनन्हिपर सोभा अति पावत।
जहँ तहँ देखहिं निज परछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं।
सुक सारिका पढावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जनपालक।
राजदुआर सकल बिधि चारू। बीथी चौहट रुचिर बजारू।

छंद—बाजार चारु न बनै बरनत वस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारिनर सिसु जरठ जे॥

दो०—उत्तर दिसि सरजू बहइ, निर्मलजल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर, स्वल्प पंक नहि तीर॥९॥

दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जलपिअहिं बाजि गज ठाटा।
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना।
राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।
तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि जिन्हकेउपवन सुंदर।
कहुँ कहुँ सरितातीर उदासी। बसहिं ग्यानरत मुनि सन्यासी।
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई।
पुरसोभा कछु बरनि न जाई। बाहिर नगर परम रुचिराई।
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपवन बापिका तडागा।

छंद—वापी तडाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं॥
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि-खग-रव जनु पथिक हकारहीं॥

दो०—रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक-सुख संपदा, रही अवध सब छाइ॥१०॥

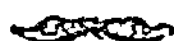
जहँ तहँ नर रघुपति-गुन गावहिं। बैठि परस्पर इहै सिखावहिं।
भजहु प्रनत प्रति पालक रामहिं। सोभा सील रूप गुन धामहिं।
जलज बिलोचन स्यामलगातहिं। पलक नयन इव सेवकत्रातहिं।
धृत सर रुचिर चाप-तूनीरहिं। संत कंज बन रवि रन धीरहिं।
काल कराल ब्याल खगराजहिं। नमत राम अकाम ममताजहि।
लोभ मोह मृग-जूथ किरातहिं। मनसिज करि हरिजनसुख दातहिं
संसय सोक निबिड तम भानुहिं। दनुज गहन घन-दहन कृसानुहिं
जनक-सुता-समेत रघुबीरहिं। कस न भजहु भंजन भवभीरहिं।
बहु-बासना मसक हिम रासिहिं। सदा एकरस अज अबिनासिहि
मुनिरंजन भंजन महिभारहिं। तुलसीदास के प्रभुहिं उदारहिं।

दो०—एहि-बिधि नगर-नारि-नर-करहिं राम-गुन-गान।
सानुकूल सब पर रहहिं संतत कृपानिधान॥११॥

जब तें रामप्रताप खगेसा। उदित भयेउ अति प्रबल दिनेसा।
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतेन्ह मन सोका।
जिन्हहिं सोक ते कहउँ बखानी। प्रथम अबिद्यानिसा नसानी।
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम-क्रोध—कैरव सकुचाने।

विविध-कर्म-गुन-काल-सुभाऊ । ए चकोर सुख लहहिं न काऊ ।
मत्सर मान मोह मद चोरा । इन्हकर हुनर न कवनिहुँ ओरा ।
धरम तडाग ग्यान बिग्याना । ए पंकज बिकसे बिधि नाना ।
सुख संतोष बिराग बिवेका । बिगत सोक ए कोक अनेका ।
दो०—यह प्रतापरबि जा के उर जब करै प्रकास ।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास ॥१२॥

कठिन शब्दों के अर्थ



वंदना

१-२ गुरुपद दोउ।

नयन अमिय = नयनामृत। गुनमय=डोरेवाला सद्वृत्तियुक्त। जङ्गम = चलता फिरता। तीरथ राजू = तीर्थराज प्रयाग। सरसइ = सरस्वती। रविनन्दिनि = यमुना। बरनी = वर्णन। बेनी = त्रिवेणी। बटु = अक्षय वट।

फल = धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। पिक = कोयल। होनी = उत्पत्ति। भूति = ऐश्वर्य। सिधि = सिद्धि। कोविद = पण्डित। बानी = सरस्वती। साग बनिक = साग बचनेवाला, कुँजड़ा। समान चित = समान चित्तवाले। अनुलिगत = अञ्जलि में प्राप्त।

३-६ सत वारि विकार।

सतिभायें = सच्चे भाव से। बसेरे = बसने पर। हरि राहु मे = विष्णु और शिव के यश रूप पूर्ण चन्द्र के लिए राहु के समान हैं। सहसबाहु = सहस्रार्जुन। सहसाखी = हजार नेत्रों से। महिषेसा = महिषासुर। केतु = पुच्छल तारा। सहस बदन = हजार मुख से। सुरानीक = देवता-झुण्ड (सुर + अनीक) सुरा (मदिरा) नीक (प्रिय)।

जन = तुलसीदास। निरामिष = मांस न खानेवाला। जग = जगत में। अपलोक = अपयश। ब्याधू = दुष्टात्मा। कलि सर = पाप की नदी, कर्मनाशा।

पोच = बुरा। लच्छि अलच्छि = लक्ष्मीवान् और बिना लक्ष्मी का। मरु = मरु देश, मारवाड़। मारव = मालव। गवासा = गाय खानेवाला।

पुष्पवाटिका में जनकनन्दिनी और राजकुमार।

१–३ उठे लषनु ... लखे न कोई।

अरुन सिखा = मुर्गा। नित्य = नित्य कर्म। नटत = नाचते हैं। आराम = बगीचा। चितइ = देखकर। निकेता = मन्दिर। गिरा = जिह्वा। (इसमें काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।) काली = कल्ह।

४–६ सुमिरि ... सकुचानी।

सिसुमृगी = बाल हरिणी। मनहुँ ... दृगचल = मानो लज्जित हो निमि ने पलकों का निवास ही त्याग दिया। 'छबि ...' में अत्युक्ति अलङ्कार है।

७–११ लताभवन ... लगे।

सींव = सीमा। कल = सुन्दर। आपनपो = अपनापन। आपा। भव ... कारिनी = आप संसार को उत्पन्न, पालन और प्रलय करने वाली हैं।

१२–१३ हृदय ... भाई।

प्राची = पूरब। रङ्क = दरिद्र। (दोहा न० १२ में व्यतिरेक अलङ्कार है।) व्याज = बहाने। कोक = चकवा पक्षी। नखत = नक्षत्र, तारे। विघटन = तोड़ने की।

मन्थरा की मन्त्रणा

१–७ तेहि अवसर ... पतियानि।

अथाई = आस्थाई, बैठक। चेता = आनन्द। खोरी = अपराध। पोची = नीच। किन = क्यों। सालु = पीडा। तुराई = तोशक, तकिया। झकी = झिड़क कर। अरगानी = चुप। फुर = सत्य।

८–१२ सादर हित लागी।

सजरी = भीलनी। रहँसी = प्रसन्न हुई। फाबी = अच्छी लगी। बीचु = अवसर। नेरु = नायक, सहायक। पसेउ = पसीना निकल आया। उकठि कुकाठु = सूखा हुआ बुरा काठ। भरब = बिताऊँगी। गुनिन्ह = ज्योतिषियों से।

१३– कुबरी न कोई।

कबुली = देवता पर चढ़ाने के लिए माना हुआ बलिपशु।

राम का कैकेयी से संभाषण

१–८ जाइ रजाइ।

सन्ध = क्रुद्ध। बरबीर = श्रेष्ठ बली। सुकृत = पुण्य से। अकनि = सुना। फनिप = साँप। आसुतोष = शीघ्र ही सन्तुष्ट होनेवाले। अवढर दानी = बिना विचारे दया द्रवित हो कर देनेवाले। रजाइ = आज्ञा। दवारी = दावानल।

९–१२ मिलेहि माँझ अधिकाइ।

परिमिति = मर्यादा। रद = दाँत। अलीहा = अमिट। चवइ = चवा करे। खरभर = खलबली। जठेरी = बड़ी बूढ़ी। आरेसु = डाह। भूँजब = भोगेंगे। कोठि = बखारी, गञ्ज। गयदु = हाथी। अलान = साँकल, जंजीर।

माता कौशल्या से राम का विदा माँगना और सीता को समझाना

१–३ रघु नहि जाइ।

आरत = दुखी। बार = देर। मकरंद = पुष्परस। सियमूल = श्री रूपी वृक्ष की जड़। धरम धुरीन = धर्म धुरन्धर। जवास = जवासा जो एक प्रकार का काँटेदार छोटा पेड़ होता है। यह वर्षा के जल में सूख जाता है और गर्मी में खूब हरा भरा रहता है। इसी कारण

ग्रीष्म में ठंडक के लिए कहीं कहीं इसकी टट्टी भी लगाई जाती है।
माँजहि = बरसात के प्रारम्भ के जल में उत्पन्न हुए झाग को।

४–९ राखि ... गुन दोष।

बलि = बलवान। मंजु बिलोचन = सुन्दर नेत्रों से। रवि बिधु = रवि के कुल (षष्ठी त०) रूपी कैरवों (रूपक कर्मधारय) के विपिन (ष० त०) के लिए विधु (पञ्चमी त०)। करि = बनाकर। लाली = लालन पालन किया। जिवनमूरि = सजीवनी जड़ी। भूरि = अनेक। सुर सर = मान सरोवर। चारी = विचरनेवाली। डाबर = गड्ढी।

१०–१४ मातु ... सुखमूल।

पदत्राना = जूता। वृक = भेड़िया। अविनय = धृष्टता। तियहि तरनिहुँते = स्त्री को सूर्य से भी बढ कर।

१५–१८ जननेवी ... बारहि बार।

सौंध = राजमहल। जोही = देख कर। छोभ = दु:ख।

माता सुमित्रा से लक्ष्मण का विदा माँगना

१–४ समाचार ... कुदाउ।

सिरात = झुक गया। नय नागर = नीति निपुण। सिअरे = शीतल। तुहिन = पाला। तामरस = कमल। सगाई = सगापन, सम्बन्ध। कुदाउँ = बुरा घात।

५–६ धीरजु ... भागवस।

बन्धु, सखा आदि का भेद इस प्रकार कहा गया है—

अल्यागसहनो बन्धु सदेवानुमत सुहृत्।
एवत्रिय भवेन्मित्र समप्राण सखामत।

भागभाजन = भाग्यशाली। नतरु = नहीं तो। बागुर = खेत को घेर कर गाड़े हुए काँटे, फंदा।

केवट की भक्ति

१-४ गय हाँकेउ ... वर देहु ।

मानुष करनि = मनुष्य बना देनेवाली । बाट परइ=डाका पड़ जायगा, अर्थात् मेरी नाव हाथ से निकल जायगी । अटपटे—जिसका कुछ उत्तर देते न बने । निहारो=प्रार्थना । पितर=पूर्वज ।

भरत की व्याकुलता

१-८ पुरजन ... नसाइ ।

गँवहि ... जाहि = गाँव से प्रणाम कर चले जाते हैं । दव लाइ = आग लगाकर । सहमेउ करि = हाथी डर गया हो । मरम पाँछि = घाव को चीर कर । पाके छतु=पके फोडे में । निति=निमित्त ।

१-८ जन त ... चीर ।

हुमगि = उछल कर । झाँइ आइ = झँव आ गया । अघटित = अमिट ।

९-१४ मुखप्रसन्न ... विधि हाथ ।

गाइगोठ = गोशाला । भव = उत्पन्न । बामपथ=बाममार्ग जो एक शास्त्र आदि वेद विरुद्ध मत है, जिसमे मदिरापान, परस्त्रीगमन आदि दुराचार मोक्ष के साधन माने जाते हैं । धरम दुहि—'गाय या पुत्री को बेचना' धर्म दुहना है । पिसुन = कपटी । बारिचर = जलचर ।

१५-१८ अस ... बहोरि ।

जयसु = वेदय । कृपन = कंजूस । भुखरू = बकवादी । विगत = रहित । वेखानस = तपस्वी । सुअन = पुत्र ।

१९-२६ कौसिल्या ... रघुबीर भरोस ।

बादि = व्यर्थ । विरति = वैराग्य । सरुज = रोगी । रसा = राज । कुलिस = वज्र । उपल = पत्थर । जठर = उदर मे । बात-बस = बात व्याधि के अधीन । अदिन = दुर्दिन । वर-बदर समाना = हाथ में

ग्रीष्म मे ठढक के लिए कहीं कहीं इसकी टट्टी भी लगाई जाती है।
माँजहि = बरसात के प्रारम्भ के जल मे उत्पन्न हुए झाग को।

४–९ रागि गुन दोप।

बलि = बलवान। मजु बिलोचन = सुन्दर नेत्रों से। रवि बिधु = रवि के कुल (षष्ठी त०) रूपी केरवों (रूपक कर्मधारय) के विपिन (ष० त०) के लिए बिधु (पञ्चमी त०)। करि = बनाकर। लाली = लालन पालन किया। जिवनमूरि = सजीवनी जड़ी। भूरि = अनेक। सुर सर = मान सरोवर। चारी = विचरनेवाली। डाबर = गडही।

१०–१४ मातु सुखमूल।

पडगाना = जूता। वृक = भेडिया। अबिनय = दृष्टता। तियहि तरनिहुँते = स्त्री को सूर्य से भी बढ कर।

१५–१८ जनन्वी बारहि बार।

सौंध = राजमहल। जोही = देख कर। छोभ = दु ख।

माता सुमित्रा से लक्ष्मण का विदा माँगना

१–४ समाचार कुदाउं।

सिरान = चुक गया। नय नागर = नीति निपुण। सिअरे = शीतल। तुहिन = पाला। तामरस = कमल। सगाई = सगा पन, सम्बन्ध। कुदाउँ = बुरा घात।

५–६ धीरजु भागबस।

बन्धु, सखा आदि का भेद इस प्रकार कहा गया है—

अत्यागसहनो बन्धु सदैवानुमत सुहृत्।
एवक्रिय भवेन्मित्र समप्राण सखामत।

भागभाजन = भाग्यशाली। नतर = नहीं तो। बागुर = खेत को घेर कर गाडे हुए काँटे, फदा।

पपासर की शोभा

१-६ पुरइनि माथ।

मर्म = पता। बकुल = मौलसिरी। पाटल = गुलाब। पनस = कटहल। पटली = झुण्ड। दुराऊ = छिपाव। राका रजनी = पूर्णिमा की रात्रि। सोम = चन्द्रमा।

७-११ अति प्रसन्न सतसग।

भेका = मेढ़क। अकिञ्चन = धन हीन। अमित = अनन्त। बोध = ज्ञान। अनीह = चेष्टा रहित। मितभोगी = अल्पभोगी। मानद = औरों को मान देनेवाले।

वर्षा शरद् वर्णन

१-६ लछिमन समुदाई।

दावर = मटमेला। आक = मदार। अगस्त = अगस्त्य तारा।

सीता-रावण-सम्वाद

३—४ निज पन पोच।

साम भेद = विरोधी मनुष्य को वश में लाने के लिए राजनीति की चार चालें हैं—साम=समता, दाम=धन से वश में लाना, भय=दण्ड देकर, भेद=अलगाव डालकर। सपदि = झट। दाम = माला। मयतनया = मन्दोदरी।

लक्ष्मण शक्ति और कुम्भकर्ण-वध

१-४ देखा भरत वीर रस।

पिता बचन ' ओहू = यहाँ लोग अनेक शकाएँ और क्लिष्ट कल्पनाएँ करते हैं। 'ओहू' से रामचन्द्र ने प्रलाप करते हुए विरह दशा में व्यक्त किया है कि चौदह वर्ष के वनवास की बात कौन कहे कि पिता जी के 'रथ चढाइ दिखराइ वन, फिरेहु गये दिन चारि' वाली बात भी जो सुमन्त से कही थी, नहीं मानता।

बेर के फल के समान। बन लागी = वनवास के लिए। तुम्ह पाँच = पर आप पञ्च लोग।

भरत-स्वभाव-चित्रण

१–६ सुनत ... बिनसाइ।

सिय-रवनू = सीता-रमण। खभारू = चिंता। कल्पि = कल्पना करके। गजाली = हाथियों का झुण्ड। जाए = व्यर्थ। रच = थोड़ा भी। निदरे = अपमान किया। उपचरा = कुव्यवहार किया। निपातऊँ = गिरा दूँगा। अँचवत = आचमन लेते ही। माँतहीं = मतवाले होते हैं। सीकरनि = बूँदों से। तरुन = मध्याह्न के। तरनिहि = सूर्य को। मकु = चाहे। गिलई = निगल जाय। मग न = मार्ग नहीं। घटयोगी = समुद्र को पी जानेवाले अगस्त्य मुनि। छोनी = पृथ्वी। सगुनुपीर = सद्गुणरूपी दूध।

७–१७ गुरु ... अवरेव।

अरगाईं = चुप। छरुभार = क्रुद्ध। खुनिस = अप्रसन्नता। बेहू = बिहर नहीं गया। पुन्य ... तोरें = पुण्यात्मा पुरुष तुम्हारे नीचे हैं। सय = सैकड़ों। गोई = छिपी। सुगति = मोक्ष। अनट अवरेव = उपद्रव की उलझन।

१८–१९ सुनि ... बिलखाइ।

राज-नय = राजनीति। निरवधि = सीमारहित। सेर सम = सेर (तौलने का बटखरा) के बराबर। बर बरनी = सुन्दर कथा। अनुभाऊ = अनुभव। भोरेहुँ = भूल कर भी। पेलिहहिं = टालेंगे।

सीता को अनुसूया का उपदेश

१–९ अनुसूया ... चतुर नर।

रिषि = अत्रि ऋषि। अमित दानि = असीम आनन्द देने वाला। सहज अपावनि = स्वभाव से ही अपवित्र। मल-कोस = पापों का भण्डार।

अन्तर्कथाएँ

(१)

"वालमीकि, नारद घटजोनी"—

वाल्मीकि—वाल्मीकिजी ने रामचन्द्रजी से कहा था कि मैं पहले किरातों के सग में चोरी ठगहारी करता था। एक बार सप्तर्षियों का दर्शन हुआ। और उनके इस उपदेश से कि "ससार में सब सुख और पुण्य के साथी होते है, दु ख और पाप में कोइ भाग लेना नहीं चाहता" मुझे ससार से वैराग्य हो गया। तब से मैं सासारिक प्रलोभनों से विरक्त हो आपका उल्टा नाम "मरा, मरा" जपने लगा और अन्त में इस पद को पहुँचा कि घर बैठे आपका दर्शन हुआ।

नारद—एक बार देवर्षि नारद ने वेदव्यास जी से कहा था कि म पूर्व जन्म में वेदज्ञ ऋषियों की दासी का पुत्र था। मै निरन्तर ऋषियों की सेवा में लगा रहता। उनके सत्सग के फल स्वरूप मेरे हृदय के विकार नष्ट हो गये और काल पाकर उस शरीर का त्याग कर यह तन पाया। अब निरन्तर भगवद्भक्ति में मग्न रहता हूँ।

अगस्त्य—एक बार अगस्त्य मुनि ने महादेवजी से कहा था कि मेरे पिता मित्रावरुण के उर्वशी पर मोह करने के फल-स्वरूप मेरा जन्म एक घड़े से हुआ। किन्तु सत्सग के प्रभाव से मेरी बुद्धि सन्मार्ग में प्रवृत्त हुई और मैं मुनीश्वर पद को प्राप्त हुआ।

(२)

"सुमिरि सीय नारद वचन"—

एक समय पार्वती पूजन को जाती हुई सीता की मार्ग में नारद से भेंट हुई। आशीर्वाद में नारद ने कहा—"इसी बाग में तुम्ह अपने पति का पहले पहल दर्शन होगा। वह राजकुमार श्यामवर्ण का होगा।"

सहोदर = विह्वल दशा में असगत प्रयोग हुआ है। कुछ लोग एक ही यज्ञ से उत्पन्न होने के कारण सहोदर शब्द का प्रयोग होना बतलाते हैं। वाल्मीकि ने भी ऐसा ही लिखा है—' तत्तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदर "।

निज कुमारी = इस में भी बहुत कल्पनाएँ की जाती हैं। यह पंक्ति भी कई दूसरी पंक्तियों की नाईं स्पष्ट अर्थवाली नहीं है। निज का अर्थ या तो राम के पक्ष में किया जा सकता है, या 'एकोन्ये प्रधाने इत्यमर' के अनुसार 'एक' का अर्थ 'प्रधान' करना ठीक है।

७–१८ हरषि

व्राता = समुदाय। मीला = मिल कर। देइ दूह = हुल्लड़ मचाते हुए। अनीक = सेना। भाथा = तरकस। नाराचा = बाण। बली-मुख = बन्दर। मेष = भेड़। श्रवन = कान। प्रयत = पर्यन्त। देवरिषि = देवर्षि नारद।

राम-राज्य-वर्णन

१–२ राम उदार।

अबुध = मूर्ख। घृनी = दयालु। कृतजुग कै = सतयुग की। जगदातमा = जगत के प्राण। बाजिमेध = अश्वमेध। गुनातीत = गुणों से परे। भोग पुरन्दर = भोग विलास में इन्द्र। गो = इन्द्रियाँ। अतीत = निर्लिप्त। पार = परे।

७–१० प्रातकाल सब छाइ।

निकर = समुदाय। अजिर = अँगनाई। फटिक = स्फटिक पत्थर। पुरट = सुवर्ण। पारावत = कबूतर। गथ = पूँजी। दाम। फराक = अलग। अनिमादिक = अणिमा आदि आठो सिद्धियाँ।

युद्ध में गये। दशरथ के साथ में कैकेयी भी थी। युद्ध रात तक चलता रहा और अन्त में निशाचरों का बल बढ गया। घायल होकर राजा दशरथ मूर्छित हो गए और सारथी भी मार डाला गया। तब सारथी का काम केकेयी ने किया और रथ भगा ले जाकर दशरथ के प्राणों की रक्षा की। मूर्च्छोंपरान्त होश होने पर दशरथ कैकेयी पर बहुत प्रसन्न हुए और कोई दो वरदान माँगने को कहा। केकेयी ने उन्हें उन्हीं के पास आवश्यकता पर माँगने के लिए धरोहर रख दिए।

इस सम्बन्ध में यह कथा भी मिलती है कि युद्ध में रथ की धुरी टूट जाने पर कैकेयी ने कील की जगह अपने हाथ की उँगली लगा पहियों को गिरने से बचाया। विजय पाने पर यह हाल देख कर राजा को परम प्रसन्नता हुई और उन्होंने उसे दो वरदान माँगने को कहा। कैकेयी के सबध मेंकहा जाता है कि एक ऋषि ने उसे यह वर दिया था कि तू जब चाहेगी, तब तेरा हाथ लोहदण्ड का काम देगा।

"सिवि दधीचि-हरिचंद कहानी"—

शिवि—राजा शिवि के ९२ यज्ञ कर चुकने पर इन्द्र को बड़ा भय हुआ और ९३ वें यज्ञ के आरम्भ में अग्नि को कबूतर बना कर यज्ञ स्थान म भेजा और स्वय बाज बन कर झपटे। कबूतर राजा शिवि की गोद में जा बैठा। शरणागत जान शिवि ने उसे छिपा लिया और बाज को उडाया। इस पर बाज ने कहा—"राजन्! मैं मारे भूख के मरा जा रहा हूँ और मेरे मर जाने पर मेरे कुटुंबी भी मर जायँगे। उनकी हत्या तुम्हें लगेगी। इसलिए मेरा आहार छीन कर पाप के भागी क्यों बनते हो?" राजा ने उत्तर दिया—"शरणागत की रक्षा करना मेरा धर्म है, अब मैं इसे छोड नहीं सकता। हाँ इसके बदले में और जो कुछ चाहो, माँगो।" अंत में कबूतर के बराबर राजा के शरीर के मांस पर बाज राजी हुआ, किन्तु स्वशरीर से मांस काटकर बार बार चढ़ाने पर भी वह कबूतर के बराबर नहीं होता था।

"मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल"—

निमि—निमि ने एक बार यज्ञ कराने के लिये वशिष्ठ जी को बुलवाया। उन्हें पहले ही इन्द्र का निमन्त्रण मिल चुका था, इसलिए वहाँ से लौट कर यज्ञ कराने को कहा। शरीर की अनित्यता पर विचार कर निमि ने देर करना उचित नहीं समझा और दूसरे पुरोहित द्वारा यज्ञारम्भ किया। इन्द्रलोक से लौटने पर शिष्य के अपमान से वशिष्ठजी बहुत रुष्ट हुए और निमि को शरीर नष्ट होने का शाप दिया। अपने पुत्रों के प्रयत्न से निमि को पुनः शरीर प्राप्त हुआ और तब निमि ने यह वर माँगा कि मैं बिना शरीर सब की पलकों पर निवास करूँ, क्योंकि शरीर से बन्धन का भय बना रहता है। तब से निमि पलकों में रहते हैं। पलकों के निमेष कहलाने का भी यही कारण है।

(३)

"कद्रू विनतहि दीन्ह दुखु" दो १०—

कद्रू—कश्यप मुनि की कद्रू और विनता नाम की दो स्त्रियाँ थीं। कद्रू सर्पों की माता थी और विनता गरुड की। एक दिन कद्रू ने विनता से पूछा—"सूर्य के घोडे की पूँछ का रंग कैसा है?" उसने कहा—श्वेत है। कद्रू ने इसे न माना और पूँछ का रंग काला कहा। अतएव दोनों में कहा-सुनी होने लगी। इस झगडे के निर्णय के लिए अन्त में निश्चय हुआ कि जिसकी बात झूठी हो, वह दासी बन कर रहे। कद्रू की बात सच्ची करने के लिये घोडे की पूँछ में सर्प जा लिपटे। तब कद्रू ने पूँछ का काला रंग दिखा दिया। विनता लज्जित हो गई और कद्रू की दासी होकर रहने लगी।

"दुइ वरदान भूप सन थाती।"—

कैकेयी-वर—एक समय दक्षिण देश के दण्डकारण्य में वैजयन्त नगर में राजा निमिध्वज के शासन काल में शम्बरासुर के साथ इन्द्र का युद्ध हुआ। इन्द्र की सहायता के लिए राजाओं समेत राजा दशरथ भी उस

करनेवाले से दो सौ श्यामकर्ण घोडे लीजिये। गालव हर्य्यश्व, दिवोदास और उशीनर के पास माधवी के साथ गये और दो दो सौ श्यामकर्ण घोडे लेकर एक एक पुत्र उत्पन्न करने दिया। तब भी दो सौ घोडे नहीं मिले। अन्त म गालव छ सौ घोडे और माधवी के साथ अपने गुरु के पास गये। विश्वामित्र ने छ सौ घोडे स्वीकार किए और माधवी से एक पुत्र उत्पन्न कर गालव को गुरु दक्षिणा से मुक्त किया।

नहुष—एक समय इन्द्र ब्रह्महत्या के कारण छिप गये थे। इन्द्रासन का पद खाली था। राजा नहुष बडे ज्ञानी और सन्तोषी थे। इन्द्र पद उन्हीं को मिला। इन्द्र-पद पाने पर नहुष ने इन्द्राणी से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। बृहस्पति की सम्मति से इंद्राणी ने कहला भेजा कि यदि तुम अपनी पालकी ऋषियों से उठवा कर आओ तो मैं तुम्हें स्वीकार करूँगी। कुछ आगा पीछा न सोच कर राजा ने सप्तर्षियों से पालकी उठवाई। जल्दी पहुँचने की इच्छा से नहुष ने मद गति से चलते हुए ऋषियों को शीघ्र चलने के लिए 'सर्प, सर्प' कहा। ऋषियों को यह बहुत बुरा लगा और तुरन्त पालकी छोड अगस्त्य जी ने शाप दिया—"तू सर्प हो जा।" सो राजा नहुष इन्द्र पद से गिर कर साँप हो गये और अनेक कष्ट उठाये।

(७)

"छुअत सिला भइ नारि सुहाई"—

अहिल्या—ब्रह्मा ने अहिल्या नाम की एक अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न की और उसका विवाह गौतम मुनि से कर दिया। इन्द्र ने छल से एक बार गौतम का रूप बना कर अहिल्या का सतीत्व नष्ट किया। उसी समय ऋषि आ गये। भयभीत अहिल्या ने मुनि पर इन्द्र का दुराचार नहीं प्रकट किया। इस कपट से मुनि को अत्यन्त क्रोध हुआ और उन्होंने अहिल्या को पत्थर हो जाने का और इन्द्र को सहस्र-

राजा के अपना मस्तक काटने पर उतारू होने पर इन्द्र और अग्नि प्रकट हो गये और भगवान् ने उन्हें अपने धाम को पहुँचाया।

दधीचि—वृत्रासुर से बहुत दुःख पाने पर देवताओं के साथ इन्द्र विष्णु भगवान् के पास गये और अपना कष्ट कह सुनाया। भगवान् ने कहा कि वह असुर दधीचि मुनि की हड्डी के अतिरिक्त और किसी अस्त्र से नहीं मर सकता। दधीचि नेमिषारण्य में तपस्या कर रहे थे। इन्द्र ने वहाँ जाकर उनकी हड्डी माँगी। दधीचि ने बड़ी प्रसन्नता से गौ से चटवा कर अपनी हड्डियाँ निकाल दे दीं और अपने शरीर का त्याग किया। उन हड्डियों का वज्र बना कर इन्द्र ने दैत्यों का संहार किया।

हरिश्चन्द्र—अयोध्या के राजा हरिश्चन्द्र की कथा उनकी सत्यता के लिए बहुत प्रसिद्ध है। हरिश्चन्द्र बहुत धर्मात्मा थे। एक बार उन्होंने विश्वामित्र को अपना सारा राज्य संकल्प करके दे दिया। उनके दक्षिणा माँगने पर हरिश्चन्द्र ने काशी में पुत्र-स्त्री को बेच कर स्वयं एक चाण्डाल का दासत्व स्वीकार कर दक्षिणा चुकाई। हरिश्चन्द्र श्मशान में मुर्दों का कर लेने का काम करते थे। अंत में इन्हीं का पुत्र मर गया। उसे श्मशान में जलाने के समय अपनी स्त्री से कर लिए बिना इन्होंने उसे नहीं जलाने दिया। जब स्त्री ने दुखी हो आधा वस्त्र फाड़ने को हाथ बढ़ाया, उसी समय भगवान् ने आकर उनका हाथ रोका और प्रसन्न होकर उनके पुत्र रोहिताश्व को जिला कर उन्हें पुनः अयोध्या के राज सिंहासन पर बैठाया। अन्त में सभी वैकुण्ठवासी हुए।

"गालव, नहुष नरेस"—

गालव—यह विश्वामित्र के शिष्य थे। विद्या समाप्त कर लेने पर इन्होंने गुरु से गुरु-दक्षिणा माँगने का आग्रह किया। गुरु ने आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे। तब वह राजा ययाति के पास माँगने गए। ययाति ने अपनी पुत्री माधवी की ओर देखकर कहा—इससे एक पुत्र उत्पन्न

करनेवाले से दो सौ श्यामकर्ण घोड़े लीजिये। गालव हर्यश्व, दिवोदास और उशीनर के पास माधवी के साथ गये और दो दो सौ श्यामकर्ण घोड़े लेकर एक एक पुत्र उत्पन्न करा दिया। तब भी दो सौ घोड़े नहीं मिले। अन्त में गालव छ सौ घोड़े और माधवी के साथ अपने गुरु के पास गये। विश्वामित्र ने छ सौ घोड़े स्वीकार किए और माधवी से एक पुत्र उत्पन्न कर गालव को गुरु दक्षिणा से मुक्त किया।

नहुष—एक समय इन्द्र ब्रह्महत्या के कारण छिप गये थे। इन्द्रासन का पद खाली था। राजा नहुष बड़े ज्ञानी और सन्तोषी थे। इन्द्र-पद उन्हीं को मिला। इन्द्र-पद पाने पर नहुष ने इन्द्राणी से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। बृहस्पति की सम्मति से इन्द्राणी ने कहला भेजा कि यदि तुम अपनी पालकी ऋषियों से उठवा कर आओ तो मैं तुम्हें स्वीकार करूँगी। कुछ आगा पीछा न सोच कर राजा ने सप्तर्षियों से पालकी उठवाई। जल्दी पहुँचने की इच्छा से नहुष ने मंद गति से चलते हुए ऋषियों को शीघ्र चलने के लिए 'सर्प, सर्प' कहा। ऋषियों को यह बहुत बुरा लगा और तुरन्त पालकी छोड़ अगस्त्य जी ने शाप दिया—"तू सर्प हो जा।" सो राजा नहुष इन्द्र पद से गिर कर साँप हो गये और अनेक कष्ट उठाये।

(७)

"छुअत सिला भइ नारि सुहाई"—

अहिल्या—ब्रह्मा ने अहिल्या नाम की एक अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न की और उसका विवाह गौतम मुनि से कर दिया। इन्द्र ने छल से एक बार गौतम का रूप बना कर अहिल्या का सतीत्व नष्ट किया। उसी समय ऋषि आ गये। भयभीत अहिल्या ने मुनि पर इन्द्र का दुराचार नहीं प्रकट किया। इस कपट से मुनि को अत्यन्त क्रोध हुआ और उन्होंने अहिल्या को पत्थर हो जाने का और इन्द्र को सहस्र-

भग हो जाने का शाप दिया। इन्द्र के कार्य में चन्द्रमा ने सहायता पहुँचाई थी, अतएव मुनि ने चन्द्रमा को शाप दिया कि तुम्हारा मुँह काला हो जाय। इसके उपरान्त मुनि अन्यत्र तपस्या करने चले गए।

वह अहिल्या चट्टान होकर निर्जन स्थान में पड़ी थी। रामचन्द्र के चरण-स्पर्श से अहिल्या शिला से पुन पूर्व रूप को प्राप्त हुई। रामन्द्र को दूल्ह रूप में जनकपुर में देख कर इन्द्र भी सहस्र आँखवाले हो गए।

"जेहि जगु किय तिहुँ पगहु ते थोरा—

बलि—राजा बलि के महायज्ञ से घबरा कर इन्द्र विष्णु के पास गये और अपने पद की रक्षा की प्रार्थना की। विष्णु वामन रूप धर कर बलि के पास गये और तीन पद पृथ्वी दान में माँगी। दान पाकर वामन ने दो पदों में नीचे पाताल से ऊपर सत्यलोक तक नाप लिया और तीसरे पद के लिए पृथ्वी माँगी। तब बलि ने अपनी पीठ नाप लेने को कहा। इस पर प्रसन्न होकर भगवान् ने उसे पाताल में जाकर राज्य करने की आज्ञा दी।

इस पौराणिक कथा की कल्पना ऋग्वेद और यजुर्वेद की इन पक्तियों पर की गई है—

"यस्य त्री पूर्ण मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।"

"इद विष्णु र्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्। समूढ्रस्य पांसुरे॥"

"परसुराम पितु अग्याँ राखी"—

परशुराम—एक दिवस परशुराम की माता रेणुका जमुना-स्नान को गई। वहाँ गन्धर्वों की क्रीडा देखने से उसका मन धर्म पथ से विचलित हो गया। आश्रम को लौट आने पर सब वृत्तान्त जानकर जमदग्नि ने क्रुद्ध होकर अपने पुत्रों को माता का सिर काटने की आज्ञा दी। तीन पुत्रों ने तो नहीं काटा, केवल परशुराम ने पिता की आज्ञा का पालन किया।

"तनय जजातिहि जौवनु दयऊ"—

ययाति—राजा ययाति की देवयानी और शर्मिष्ठा नामक दो रानियाँ थीं। देवयानी शुक्राचार्य की कन्या थी और शर्मिष्ठा वृषपर्वा की। विवाह के समय ही शुक्राचार्य ने शर्मिष्ठा से प्रेम न करने की प्रतिज्ञा ययाति से करा ली थी। परन्तु शर्मिष्ठा के पुत्र उत्पन्न होने पर राजा के प्रतिज्ञा-भंग की बात जानकर शुक्राचार्य को बड़ा क्रोध हुआ और ऋषि ने राजा को बुड्ढे हो जाने का शाप दिया। राजा के बहुत प्रार्थना करने पर शुक्राचार्य ने युवा अवस्था बदल लेने का नियम निश्चित कर दिया। तब राजा ने बारी बारी से अपने सभी पुत्रों से जरावस्था से युवावस्था को बदलने की बात कही। पर कोई सहमत नहीं हुआ। अन्त में सबसे छोटे पुत्र पुरु ने पिता की आज्ञा को अपनी युवावस्था के सुख भोग से कहीं महत्व की समझ कर अपनी जवानी पिता को देकर उनका बुढ़ापा आप ले लिया।

"ससि गुरु समान" दो० ३—

चन्द्रमा—त्रिलोक को जीत चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ किया और अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का भी हरण कर उसके साथ संभोग किया। इस पर देवताओं में घोर युद्ध आरम्भ हुआ और उसके अन्त के लिए बीच में पड़ कर ब्रह्मा ने तारा बृहस्पति को दिलवा दी और उससे बुध नाम का जो पुत्र हुआ था, वह चन्द्रमा को मिला।

नहुष—पीछे ४ में पाठ पृष्ठ १०१ में इनका वर्णन दिया गया है।

वेन—वेन जन्म से ही वाचाल, दुष्ट प्रकृति और उपद्रवी था। पिता के दुखी होकर वन चले जाने पर वेन राजा हुआ। राज्य मिलने पर वह और उत्पाती हो गया। उसने धर्म-कार्य रोक दिए और ब्राह्मणों को अपनी पूजा करने पर बाध्य किया। जब ऋषियों और ब्राह्मणों के बहुत समझाने पर भी उसने कुछ ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने क्रुद्ध हो उसे भस्म कर दिया। ईश्वर के अवतार राजा पृथु वेन के ही पुत्र थे।

भग हो जाने का शाप दिया। इन्द्र के कार्य में चन्द्रमा ने सहायता पहुँचाई थी, अतएव मुनि ने चन्द्रमा को शाप दिया कि तुम्हारा मुँह काला हो जाय। इसके उपरान्त मुनि अन्यत्र तपस्या करने चले गए।

वह अहिल्या चट्टान होकर निर्जन स्थान में पड़ी थी। रामचन्द्र के चरण-स्पर्श से अहिल्या शिला से पुन पूर्व रूप को प्राप्त हुई। रामन्द्र को दूलह रूप में जनकपुर में देख कर इन्द्र भी सहस्र आँखवाले हो गए।

"जेहि जगु किय तिहुँ पगहुँ ते थोरा—

बलि—राजा बलि के महायज्ञ से घबरा कर इन्द्र विष्णु के पास गये और अपने पद की रक्षा की प्रार्थना की। विष्णु वामन रूप धर कर बलि के पास गये और तीन पद पृथ्वी दान में माँगी। दान पाकर वामन ने दो पदों में नीचे पाताल से ऊपर सत्यलोक तक नाप लिया और तीसरे पद के लिए पृथ्वी माँगी। तब बलि ने अपनी पीठ नाप लेने को कहा। इस पर प्रसन्न होकर भगवान् ने उसे पाताल में जाकर राज्य करने की आज्ञा दी।

इस पौराणिक कथा की कल्पना ऋग्वेद और यजुर्वेद की इन पंक्तियों पर की गई है—

"यस्य त्री पूर्ण मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।"

"इद विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्। समूढ़मस्य पांसुरे॥"

"परसुराम पितु अग्याँ राखी"—

परशुराम—एक दिवस परशुराम की माता रेणुका जमुना-स्नान को गईं। वहाँ गन्धर्वों की क्रीडा देखने से उसका मन धर्म पथ से विचलित हो गया। आश्रम को लौट आने पर सब वृत्तान्त जानकर जमदग्नि ने क्रुद्ध होकर अपने पुत्रों को माता का सिर काटने की आज्ञा दी। तीन पुत्रों ने तो नहीं काटा, केवल परशुराम ने पिता की आज्ञा का पालन किया।

"तनय जजातिहि जौवनु दयऊ"—

ययाति—राजा ययाति की देवयानी और शर्मिष्ठा नामक दो रानियाँ थीं। देवयानी शुक्राचार्य की कन्या थी और शर्मिष्ठा वृषपर्वा की। विवाह के समय ही शुक्राचार्य ने शर्मिष्ठा से प्रेम न करने की प्रतिज्ञा ययाति से करा ली थी। परन्तु शर्मिष्ठा के पुत्र उत्पन्न होने पर राजा के प्रतिज्ञा-भंग की बात जानकर शुक्राचार्य को बड़ा क्रोध हुआ और ऋषि ने राजा को बुड्ढे हो जाने का शाप दिया। राजा के बहुत प्रार्थना करने पर शुक्राचार्य ने युवा अवस्था बदल लेने का नियम निश्चित कर दिया। तब राजा ने बारी बारी से अपने सभी पुत्रों से जरावस्था से युवावस्था को बदलने की बात कही। पर कोई सहमत नहीं हुआ। अन्त में सबसे छोटे पुत्र पुरु ने पिता की आज्ञा को अपनी युवावस्था के सुख भोग से कहीं महत्व की समझ कर अपनी जवानी पिता को देकर उनका बुढ़ापा आप ले लिया।

"ससि गुरु समान" दो० ३—

चन्द्रमा—त्रिलोक को जीत चन्द्रमा ने राजसूय यज्ञ किया और अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का भी हरण कर उसके साथ संभोग किया। इस पर देवताओं में घोर युद्ध आरम्भ हुआ और उसके अन्त के लिए बीच में पड़ कर ब्रह्मा ने तारा बृहस्पति को दिलवा दी और उससे बुध नाम का जो पुत्र हुआ था, वह चन्द्रमा को मिला।

नहुष—पीछे ४ में पाठ पृष्ठ १०१ में इनका वर्णन दिया गया है।

वेन—वेन जन्म से ही वाचाल, दुष्ट प्रकृति और उपद्रवी था। पिता के दुखी होकर वन चले जाने पर वेन राजा हुआ। राज्य मिलने पर वह और उत्पाती हो गया। उसने धर्म-कार्य रोक दिए और ब्राह्मणों को अपनी पूजा करने पर बाध्य किया। जब ऋषियों और ब्राह्मणों के बहुत समझाने पर भी उसने कुछ ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने क्रुद्ध हो उसे भस्म कर दिया। ईश्वर के अवतार राजा पृथु वेन के ही पुत्र थे।

"सहस्रबाहु सुरनाथ त्रिसकु"—

सहस्रबाहु—एक बार आखेट करता हुआ राजा सहस्रबाहु जमदग्नि मुनि के आश्रम में जा निकला। मुनि के आदर-सत्कार पर राजा को आश्चर्य हुआ कि इतनी सम्पत्ति मुनि के पास कहाँ से आई। पूछने पर ज्ञात हुआ कि मुनि के पास कामधेनु है और यह सारा वैभव उसी का है। सहस्रबाहु उसे माँगने लगा। मुनि के न देने पर राजा का क्रोध बढ़ गया और वह मुनि को मार कर गौ ले चला। गौ तो छूट कर इन्द्रलोक में भाग गई, इधर जमदग्नि पुत्र परशुराम ने युद्ध में सहस्रबाहु को मार कर पृथ्वी को २१ बार निःक्षत्रिय किया, और यज्ञ के प्रताप से जमदग्नि को भी जीवित कर लिया।

सुरनाथ—एक बार सुरनाथ इन्द्र अपने सिंहासन पर बैठे थे कि सुरगुरु बृहस्पति जी वहाँ आये। राजमदान्ध इन्द्र के यथोचित्त आदर न करने पर वह अप्रसन्न होकर स्वर्ग से चले गये। गुरुद्रोह के कारण इन्द्र पर भारी विपत्ति आई। दैत्यों ने चढ़ाई कर देवताओं को स्वर्ग से मार भगाया। तब इन्द्र ने ब्रह्मा की सलाह से तपस्वी विश्वरूप को अपना पुरोहित बना कर अनेक प्रयत्नों द्वारा अपनी रक्षा की।

त्रिशङ्कु—राजा त्रिशङ्कु सशरीर स्वर्ग जाने की इच्छा से उद्योग करने लगा। उसने वशिष्ठ और उनके पुत्रों से इस कार्य्य में सहायता माँगी, किन्तु नकारात्मक उत्तर पाकर विश्वामित्र के पास गया। विश्वामित्र ने अपनी तपस्या के बल से उसे स्वर्ग को भेज तो दिया, परन्तु स्वर्गवासियों ने उसे धक्का देकर नीचे गिरा दिया। विश्वामित्र के तप और सुर-बल से वह बीच में ही टँगा रह गया।

"सुधि करि अंबरीष, दुरवासा"—

अंबरीष—यह अयोध्या का एक सूर्यवंशी राजा प्रशुश्रक का पुत्र था और इक्ष्वाकु से २८ वीं पीढ़ी में हुआ। इसके कारण विष्णु के चक्र ने दुर्वासा ऋषि का पीछा किया था।

दुर्वासा—यह अत्रि मुनि के पुत्र थे और अत्यन्त क्रोधी थे। इन्होंने और्व मुनि की कन्या कदली से विवाह करते समय प्रतिज्ञा की थी कि उसके सौ अपराध तक क्षमा करेंगे। इससे अधिक अपराध होनेपर उन्होंने शाप देकर कदली को भस्म कर दिया। इस पर शोकातुर और्व मुनि ने श्राप दिया—'तुम्हारा दर्प चूर्ण होगा।"

इसके अनन्तर एक दिन दुर्वासा अतिथि स्वरूप राजा अंबरीष के यहाँ ऐसे समय पहुँचे, जब वह एकादशी व्रत के सब कृत्य समाप्त कर पारण की तैयारी में थे। निमंत्रण लेकर मुनि स्नान करने चले गए और इतनी देर की कि पारण का समय जाने लगा। राजा ने जल पीकर पारण कर लिया। आने पर यह वृत्तान्त जानते ही दुर्वासा के क्रोध की सीमा न रही और उन्होंने राजा के नाश की कृत्या प्रकट की। अंबरीष परम हरिभक्त वैष्णव थे और सुदर्शन चक्र उनका शरीर रक्षक था। सुदर्शन ने अपने तेज से कृत्या को भस्म कर दिया और दुर्वासा पर लपका। रक्षार्थ दुर्वासा ब्रह्मा, शिव और विष्णु के पास गये पर कहीं रक्षा नहीं हुई। अन्त में राजा की ही शरण में आये और राजा ने स्तुति कर चक्र को शान्त किया।

"मोर श्राप करि अङ्गीकारा"—

एक बार नारद को कामदेव पर विजय पाने का अभिमान हुआ। उसे दूर करने के लिए लक्ष्मीकान्त ने शीलनिधि नामक एक राजा की विश्वमोहनी कन्या को देखने का अवसर दिया। उसे देखते ही नारद जी मोहित हो गये और स्वयंवर में जयमाल पाने की लालसा से पुन विष्णु भगवान् से अनुपम सौंदर्य माँगने गए। विष्णु ने उनको नेह का विश्वास दिया। स्वयम्वर म नारद मुनि भी विजय की आशा के अभिमान म जा बैठे। परन्तु राजकुमारी ने उनकी ओर देखा भी नहीं, क्योंकि उनका मुख बन्दर के मुख के समान काला और डरावना दिखाई पड़ता था। इस पर मुनि विह्वल हो उठे। वहीं भगवान भी राजा का शरीर

धारण किए हुए उपस्थित थे। कुमारी ने उन्हें ही जयमाला पहना दी। इस पर नारद जी अत्यन्त व्याकुल हो उठे। वहाँ दो रुद्रगण भी थे। वे मुस्करा कर बोले—"जरा अपना मुँह तो आइने में देखिए।" जल में अपना मर्कट मुख देख नारद को बड़ा क्रोध हुआ और उन्हें राक्षस होने का शाप दिया और भगवान् के पास चले। राह ही में वह राजकुमारी के साथ मिल गये। नारद जी ने उन्हें बहुत भला बुरा कहा और शाप दिया —"तुमने हमारा चेहरा बन्दर का कर दिया, जिससे मुझे राजकुमारी नहीं मिली। अतएव तुम्हें भी पत्नी वियोग होगा, और तब बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे।"

पाण्डेय रामावतार शर्म्मा एम ए विशारद
की बनाई हुई कुछ अन्य पुस्तकें

भारतवर्ष का इतिहास—प्रवेशिका-परीक्षार्थियों के पढने योग्य पुस्तक होने के कारण पटना विश्वविद्यालय द्वारा मेट्रिकुलेशन परीक्षार्थियों के लिए स्वीकृत पाठ्य पुस्तक है। स्मिथ, प्रोथेरो, ए सी मुखर्जी, आर सी दत्त आदि के अंग्रेजी में लिखे इतिहासों के पढने वालों को भी इसे अवश्य पढ़ना चाहिए, क्योंकि विद्यार्थियों की कठिनाइयों और परीक्षा की आवश्यकताओं पर पूरा ध्यान रखकर इसकी रचना की गई है। इसका उर्दू-सस्करण भी तैयार हो गया है। मूल्य १॥)

नीचे की कुछ सम्मतियाँ भी पढ़ें —

"The book is a delightful reading It is written in a scholarly style and gives plenty of facts The author deserves every encouragement "—Mr R P Khosala, M A, I E S, Vice-Principal, G B B College, Muzaffarpur

'It is better than similar books published on the subject and is quite suitable for the Sanskrit and Hindi Students "—Sahityacharya Pt Ramavatar Sharma, M A Prof Patna Cgllege

"The author has written this book with great care and judgment The book is undoubtedly and preeminently fit for those for whom it is primarily intended "—Pt Batuknath Sharma M A Sahityopadhyaya M R A S, M D M G, Prof Hindu University Benares

"The most important feature of the book is the easy and lucid fashion with which certain very knotty

problems of History have been explained "
—B Shiva Chand Kapur, M A, M R A S, Prof
Queen's College, Benares

प्रबन्ध-पुष्पाञ्जली—इसमें बिहार के प्राय सभी प्रसिद्ध लेखकों के सुन्दर लेखों का सग्रह है। लेख भिन्न २ विषयों पर भिन्न २ शैली में लिखे गए हैं और सरसता तथा शिक्षा से भरे हैं। मैट्रिकुलेशन तक के हिन्दी पढनेवाले विद्यार्थियों को इसे अवश्य पढना चाहिए। मूल्य ।।।≈)

संस्कृत ज्ञानोदय—यह संस्कृत के व्याकरण अनुवाद के नियमों को समझानेवाली एक अपूर्व पुस्तक है। विद्यार्थियों की आवश्यकता और कठिनाइयों से पूर्ण परिचित लेखक ने व्याकरण और अनुवाद सम्बन्धी नियमों को इस ढग से समझाया है कि विद्यार्थियों को इस विषय की कुछ भी क्लिष्टता नहीं रह जाती, न इसके पढने पढाने से किसी अन्य व्याकरण या अनुवाद की पुस्तक की आवश्यकता जान पडती है। इसका प्रकाशन खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर ने किया है। मूल्य ।।)

पता—शर्म्मा-साहित्य सदन, खरौंधी,
पो० भवनाथपुर, जिला पलामू